

"भक्त"


तिथी
पु०सं० 2914
भारती पुस्तकालय

श्री तुलसी-गुणगान



रचयिता—

"भक्त"



—०—

विक्रम सम्वत् २००७

—०—

सम्पादक—

साहित्यालङ्कार-

पं० आनन्द झा न्यायाचार्य

वेदान्त-वागीश

काशी

प्रथम संस्करण १००० मूल्य १)

प्रकाशक—

रोवल-मठ

परली-वैद्यनाथ

दक्षिण-हैदराबाद

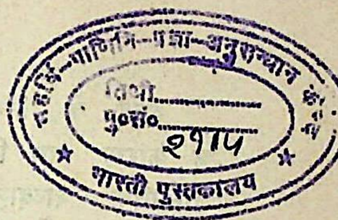
श्री सच्चिदानन्द तुलसी प्रभु जी।
सद्भक्त के नाथ तुम हो गुरुजी॥

मुद्रक—

परेशनाथ घोष

सरला प्रेस

बनारस



सम्पादकीय

जबतक संसार में "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्" इत्यादि श्रुतिस्मृतियाँ विद्यमान हैं तबतक पहुँचे हुए सिद्ध महापुरुषों के गुणगान को "नर-काव्य" कह कर कोई नीचे नहीं गिरा सकता। विदेहमुक्त महात्मा तुलसी राम प्रभु की आश्चर्य-प्रद जीवनी को पढ़कर उनके माहात्म्य के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह जाता। उनके अहेतुक भक्तों की परम्परा बहुत बड़ी है। उनके भावुकताशील अनेक भक्तों ने आप दिव्य-महापुरुष के सम्बन्ध में अपने अपने हृदय के विमल उद्गार को जिन गीत-काव्यों के रूप में श्रद्धाशील भारतीय जनता के समक्ष उपस्थित किया है उन्हें ही "श्री तुलसी गुणगान" के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इस प्रकाशन का मुख्य श्रेय है उक्त महात्मा में फलाभिसन्धि-रहित अतुल निष्ठावान् भक्त-गणेश को जो कि मन से केवल इसका प्रणयन ही नहीं किया है अपितु तन और धन से इसके प्रकाशन का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले छोड़ा है।

इसके अधिक गीत-काव्य आधुनिक चित्रपटीय गानों के सुश्रव-तर्ज़ों में बँधे और सधे हैं।

छन्द के नियम उपनियमों से प्राप्त विवशता-के कारण जब कि पद्य-कवियों को भी कहीं कहीं ज्ञानपूर्वक शब्दानुशासन-सम्बन्धी बन्धन को ढीला करना पड़ता है फिर उन गीत-कवियों के लिए कहना ही क्या है, जिन्हें केवल छन्द का ही नहीं अपितु उसके साथ स्वर का भी बहुत बड़ा भार रहता है। और भक्त गीत-कवियों की बात तो और निराली होती है क्योंकि वहाँ छन्द स्वर और भाव (भक्ति) इनकी वह त्रिपुटी-त्रिपथगा वह निकलती है जिसके प्रबल प्रवाह में शब्दानु-शासन-सेतु का भङ्गभय अधिक रहता है। परन्तु यहाँ उसकी रक्षा के लिए भी यथासम्भव पूर्ण प्रबन्ध किया गया है। फिर भी यदि किसी के प्रमाद से कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो गुण-पक्षपाती सहृदय अपनी सरसता से उसे पूर्ण करने का अनुग्रह दिखलायेंगे।

विनीत

आनन्द झा

समर्पण

हे मायातीत, भावातीत, द्वंद्वातीत, त्रिगुणातीत, क्रियातीत अर्थात् सर्वातीत होकर जीवों के परम कल्याण स्वरूप—श्री सच्चिदानन्द तुलसीराम प्रभो !

हे प्रसन्नात्मा, प्रकाशात्मा, विशुद्धात्मा, विमुक्तात्मा, परमात्मा अर्थात् निर्विकार स्वरूप भगवन् !

हे प्राणेश्वर, जगदीश्वर, भक्तेश्वर, देवेश्वर, सर्वेश्वर अर्थात् अप्रमेय स्वरूप महाप्रभो !

'विदेह रूप (साकार) से अखण्डैकरस चैतन्य (निराकार) में स्थित (विलीन) होने वाली—हे निर्मल, निरञ्जन, निर्विशेष, निरुपाधिक एवं स्वस्थ स्वरूप "माँ" !

—तुम्हें इस 'भक्त-बालक' का अनन्य प्रेमपूर्वक अगणित-अगणित, देहार्पित नमस्कार है। फिर भी तुम्हारे चरण-नख के सूक्ष्म अंश के उपकार की भी देन मुझ से चुक नहीं सकी।

हे देव ! तुम्हारे 'गुणगान' में मैं सर्वदा असमर्थ हूँ ! परन्तु, तुम्हारी ही कृपामय प्रेरणा थी कि यह "ग्रन्थ" लिखा जा सका, अतएव यह तुम्हारी ही दी हुई वस्तु तुम्हारे ही पद-कमलों में समर्पित है।

—"भक्त"

श्री तुलसीरामप्रभु प्रसन्न ।

प्रस्तावना

हम सब (जगत्-मात्र) विज्ञानानन्दघन परमात्मा ब्रह्म के अंश हैं। किन्तु अपने अपने कर्मानुसार सुख-दुःख के भोक्ता बने हैं। हमें चाहिए कि, "सांसारिक भोग विलास को क्षणिक (नाशवान्) समझकर और भौतिक उन्नतिसे निवृत्त होकर एक सच्चिदानन्दमय परमात्मा का चिन्तनकरें । तथा अविद्या (अज्ञान) को नष्ट करें।" अर्थात्—

'मानव जीवन का उद्देश्य है कि' "प्रारब्ध को भोगते हुए सच्चे कर्म करते रहना, और किये हुए कर्म से अलिप्त रहकर-जैसी अवस्था प्राप्त हो उसी अवस्थामें शान्त होकर (समाधान पाकर) संसार से विमुक्त हो जाना।"

इसी एक उद्देश्य को सामने रखकर, जगत् के कल्याणार्थ इस "श्री तुलसी-गुणगान" नामक ग्रन्थ को सेवा रूप में प्रकाशित किया गया है।

इसके दो भाग हैं। जिसके अन्तर्गत प्रथम-भाग और अन्तके दो भजनों का गान महाप्रभु श्री तुलसी राम जी के समक्ष गाये हुए हैं।

विशेष महत्त्व की बात यह है कि इस दीन-भक्त के मनको प्रफुल्लित करने वाले, बिगड़ी हुई भावना को भी सुधार देनेवाले तथा शङ्काका समाधान कर सदैव प्रसन्न (सन्तुष्ट) करने वाले आनन्द स्वरूप श्रीमान्-पं० आनन्द जी "झा" की सूक्ष्मदृष्टिने इस "गुणगान" का सम्पादन कर हम भक्तों को कृतार्थ किया है। यदि आप जैसे महान् प्रेमी विद्वान् नहीं मिलते तो इस समय इस पुस्तक का प्रकाशन असम्भव ही था। अतः मैं आपका सदाके लिए ऋणी हूँ। यह भी यहाँ उल्लेखनीय है कि पं० अ० शा० श्री गङ्गाधर शर्मा काव्यतीर्थ ने इसके शुद्ध-प्रकाशन में पूर्णसहायता पहुँचाई है। उक्त सम्पादक विद्वद्वर "झा" जी से भी मुझे आपने ही मिलाया है। अतः आपका भी मैं कम आभारी नहीं।

अन्तमें पुनीत पाठकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि दोषों का त्यागकर गुणमात्र का ग्रहण करते हुए इसे पढ़कर आनन्द लाभ करें।

जय तुलसी

"भक्त"

श्री तुलसीराम प्रभुप्रसन्न ।

"भक्त-वाणी"

—:*:—

प्रेमियो ! 'प्रभु तुलसी' की महिमाअपार—
ब्रह्मा विष्णु महेश गावे तो भी नहीं पार ॥

स्वर्ग-मर्त्य-पाताल रूपी कई कागज़ और सभी समुद्र भर की स्याही छोटी लेखनी से लिखने पर खतम हो जाय परन्तु "महाप्रभु" की महिमा का वर्णन एक कण भर भी नहीं हो पाता । अतः मैं पामर क्या वर्णन करूँ ? परन्तु श्रीसच्चिदानन्द "महाप्रभु" जैसी बुद्धि देते हैं वैसी ही मैं सेवा करता हूँ, न कि मैं अपने मन के वश होकर कुछ करता हूँ !

प्रभु तुलसी के दर्शन को ही मैं दुनिया में जन्मा हूँ ।
सभी मनुजादि जीवों-से मुदित मन मिलने आया हूँ ॥टेक॥
नहीं थी वासना कोई, नहीं थी राज की आशा;
नही थी कीर्ति की आशा ।
लगन थी फक्त श्री प्रभु की जो मैं दर्शन को पाया हूँ ॥१॥

लगाता मन प्रभू में जब, हृदय गति रुकने लगती है;
सुखद तब याद आती है।
कहा जाता नहीं कुछ भी कहूँ तो कह न सकता हूँ ॥२॥

सुनो विश्वास से बेशक प्रेमियो, प्रेम की वाणी।
मधुर तम 'भक्त' की वाणी।
सभी को ज्ञानप्राप्ति हो यही मैं-"भक्त" चाहता हूँ ॥३॥

प्रेमियो ! मीठी-मीठी बातों से आपको मोह में लाना और फसाना यह मेरा अभिप्राय नहीं है। एक मात्र "महाप्रभु" की सेवा रूप से जगत् का कल्याण हो यही मेरी चाह (इच्छा) है।

यदि इतने पर भी कोई कहे—"यह सब ढोङ्ग चाल-बाजी है" तो यह कहने वालों की इच्छा है ! श्री "महाप्रभु" से मैंने कोई लौकिक उपकार नहीं प्राप्त किया है, उन्होंने मुझे न पैसा दिया है, न दूध पिलाया है, न उपदेश किया है कि मैं इनका वर्णन खूब बढ़ाकर करूँ ! परन्तु—

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥'

इस सदुक्त्यनुसार "महाप्रभु" सभी के हैं। इसी दृष्टि से मैं "प्रभु के" वश होकर इन्हीं के अन्तर्यामी प्रेरणा से मैं एक दीन-भक्त, वर्णन कर रहा हूँ। मैं ही अकेला इनका

लाड़ला नहीं हूँ! किन्तु जो चाहे सो इनका वर्णन कर सकता है। जो चाहे सो इनकी महिमा गा सकता है। और जो चाहे सो इनकी उपासना (भक्ति) करके इनको प्राप्त कर सकता है। इनको प्राप्त करने के लिए न काल की आवश्यकता है और न विद्वत्ता की, न धन की आवश्यकता है और न जाति की, न सुस्वरूप होने की आवश्यकता है और न सगुण होने की। केवल, किसी रूप में इनकी पहचान होना ही आवश्यक है। चाहे फिर कोई भी क्यों न हो वह धन्य-धन्य है।

अतः श्री "महाप्रभु" की पहचान का साधन विशेषतः इस ग्रन्थ में तो है ही परन्तु सिद्ध पुरुषों के द्वारा लिखित कई ग्रन्थों में भी मिलता है-जहाँ 'जीवन-मुक्ति' तथा 'विदेह-मुक्ति' के सम्बन्ध में लिखा रहता है। अब अपना और दूसरों का कल्याण चाहने वाले प्रेमियों को चाहिए कि इस 'विदेह मुक्त--भगवान तुलसीराम प्रभु' को अच्छी तरह समझ लें और बन्ध-मोक्ष से मुक्तता प्राप्त करलें।

मैं यह भी प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ कि, "जो इस एक भी 'ग्रन्थ' को सोच समझकर पढ़ेंगे और गाकर भावार्थ को कृति में प्राप्त करेंगे वे ऐसा योग्य फल पायेंगे, जिस फल से बढ़कर समस्त संसार में कोई फल नहीं है।"

प्रेमियो! यहाँ आपको 'अभिमान' कदाचित् दिखाई देगा—मुझे क्षमा कीजिये। अनर्थ न हो कि—

"श्री महाप्रभु" के सिवा फल मिलने का अन्य कोई साधन नहीं है !" समझो, शक्ति एक होती है परन्तु अनेक रूपों में होती है। इन अनेक (पिंडज, अंडज, उद्भिज्ज और स्वेद्ज) रूपों में मानव रूप सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इस मानव रूप में जो "विदेह" रूप होता है वह मानव के कल्याणार्थ अत्यन्त ही उपयोगी, परोपकारी तथा अत्यन्त सुलभ निर्भ्रामक होता है। इसकी विशेषता यह है कि—समस्त संसार में ऐसा विदेह रूप अत्यन्त विरल होता है, और विरल होनेपर भी अव्यक्त होता है। लोगों के भाग्यानुसार ही यह रूप प्रगट होता है—

अपना महान् भाग्य है कि ऐसा दुर्लभ और परम "विदेह रूप" श्री भगवान् "महाप्रभु" के रूप में हम सब जगत् मात्र को प्राप्त हुआ। अतः मैं प्रेम के नाते अन्तः-करण से कहता हूँ कि प्रत्येक प्रेमी मनुष्य इनकी पूर्ण पह-चान कर ले !

या जिनको देखते ही मन-बुद्धि आदि सम्पूर्ण शरीर इन्द्रिय कुंठित हो संसार को विसर कर "प्रभु" ही में लीन हो जाते हैं। इसके बाद कुछ सावधानता आती है, जिसमें एक "प्रभु" के सिवा और कुछ न चाहिए ऐसी उत्कट इच्छा होती है। इस इच्छा के बाद जिनके साधारण क्रिया कलाप को देखकर सिद्धानुभव पाने के कारण सारी कल्पनाएँ नष्ट होती हैं। एवं जिन को देखते ही, "धन्य-धन्य" "सच्चिदानन्द !" "अघटित-अनन्त-अद्भुत-

लीलामय" इस प्रकार "तत्त्वमसि" आदि वाक्यजन्य "अहं ब्रह्मास्मि" इस महानुभव के समान अनिर्वचनीय बोध होने लगता है और वृत्ति शान्त होती है ।"—इस परख से संसार के कल्याणार्थ; जन्म-जरा से छुटकारा पाने के लिए अत्यन्त सुलभ मार्ग "विदेह रूप"—'निःसंशय सद्गुरु' की तलाश करनी चाहिए। यदि सुयोग से कहीं पता लगे तो वहाँ झट से सेवक बनना चाहिए तथा अभिमान को पास फटकने न देते हुए अत्यन्त नम्रता से निडरता पूर्वक-संशय रहित होकर अपने प्राण से बढ़कर उनकी (विदेह रूप-सद्गुरुकी) सेवा करनी चाहिए।

प्रेमियों ! 'विदेह रूप' (सहज स्थिति) के सम्बन्ध में और कितना कहूँ ?······वाणी चटपटाती है, कण्ठ गद्गद् होता है, शरीर थर्राने लगता है, बुद्धि मन्द होती है, दृष्टि अन्ध होती है, वृत्ति भान-रहित होती है और हृदय में प्रेम की बाढ़ आकर आँसू रूप में नैन द्वारा तथा पसीना रूप में शरीर द्वारा वह प्रेम बहने लगता है !

'आखिर कह देता हूँ'—"श्रीतुलसीराम प्रभु में लीन होने वाला चाहे दरिद्री, अधम, अछूत या भोगी हो—वह मुमुक्षु, जिज्ञासु, साधक या ज्ञानी कभी दुःखी

नहीं होता, वह "महाप्रभु" के अनन्य प्रेम से आपत्तियों को भी सहते हुए नित्य आनन्दी ही होता है और सदैव 'सच्चिदानन्द' में झूलने लगता है।"

सभी प्राणियों का—

"भक्त"

श्रीहनुमानजी की वन्दना

उपकारी हैं श्री हनुमान ।
मिला दिये तुलसी भगवान् ॥ टेक ॥

निर्विकार हैं क्षमाधार हैं ।
अमर रूप हैं मुक्त रूप हैं ।
देहार्पण मैं करूँ प्रणाम ॥उपकारी० ॥१॥

भक्तिनायक, शक्ति दायक ।
मार्ग दर्शक, विघ्ननाशक ।
जय जय जय हो जय बलवान ॥उपकारी० ॥२॥

प्रभु इच्छा से गाऊँ सुख से ।
ब्रह्मादिक भी गावें मुखसे ।
"श्री भगवान् तुलसी गुणगान" ॥उपकारी०॥३॥

सौम्य मनोहर रूप दिखाया ।
"भक्त-भक्त" को हिये लगाया ।
मन्त्र दिया "प्रभु तुलसीराम" ॥उपकारी० ॥४॥

प्रेमियो ! आपको शङ्का होगी कि "इस ग्रन्थ में श्री हनुमानजी का वर्णन कैसे आगया ?"—इसका मुख्य कारण यह है कि मुझे बचपन ही से श्री हनुमान जी की भक्ति रही। श्री हनुमानजी को प्रसन्न रखने के लिए मैं हरदम मन-ही-मन नाम-स्मरण बराबर करता रहा तथा मूर्तिका भी ध्यान करता रहा एवं ब्रह्मचर्य की महिमा देख-कर चकित होता हुआ व्यायाम तथा प्राणायाम करता रहा। इसी बीच परम-ब्रह्मचारी स्वरूप 'श्रीतुलसीराम प्रभु' का दर्शन पाया। अतः इन्ही को (महाप्रभुको) श्री हनुमानजी का स्वरूप समझकर हर रोज दर्शन करने लगा। तब भी नामोच्चारण श्री हनुमानजी का ही करता रहा।

एक समय स्वप्न में एक ऐसी घटना घटी—जिसका वर्णन मेरे शक्ति के बाहर है, फिर भी कुछ-न-कुछ लिखना आवश्यक है —

स्वप्न में देखा कि—पहाड़ी स्थल है। जहाँ अनेक मन्दिर हैं। जिसमें श्री शिवजी का और श्री रामचन्द्र प्रभु का मन्दिर विशाल तथा रमणीय है। प्रेम भरे हृदय से श्री हनुमानजी को पुकारते हुए मैंने श्री रामचन्द्र प्रभु के मन्दिर में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही कई रङ्ग का एक प्रभा मण्डल सा प्रकाश दिखाई दिया। जिसको देखकर मैं चकित हो गया। उसीक्षण—

—मोहक रूपधारी प्रसन्न रूप श्री हनुमान मेरे सामने आ खड़े हुए। मैं बिलकुल देह-भान-रहित हो गया और श्री

हनुमान के चरणों में झुका। श्री हनुमानजी ने मुझे उठा-कर अपने हृदय लगाया और कान में "तुलसीराम"—यह मन्त्र स्पष्ट कह दिया-और परम सौम्यमूर्ति श्री—हनुमानजी अन्तर्धान हुए। और मैं "तुलसीराम"—"तुलसीराम" कहता हुआ जाग गया।—इस जीवन पथ-प्रदर्शक दर्शन से ही मैं 'श्री हनुमान' की जगह 'श्री तुलसी-राम' कहने लगा।

प्रेमियो ! सच देखा जाय तो ब्रह्मा-विष्णु-महेश तथा-राम-कृष्ण-हनुमान आदि सभी रूप श्री "महाप्रभु" में ही शामिल हैं। और यह सिद्ध है कि—अखण्ड चिदानन्द-एक-रस चैतन्य स्वरूप में सभी की एकता होती है।

अस्तु, उपरोक्त विषय का विस्तार करने के लिए इस छोटे से "ग्रन्थ" में जगह नहीं है। तथापि—

जिस श्री हनुमानजी की प्रसन्नता से मेरे जीवन सम्बल 'श्री सच्चिदानन्द तुलसीराम प्रभु' मुझे प्राप्त हुए उनको प्रथम वन्दन करना अपना कर्तव्य समझकर यहाँ उनकी वन्दना की है।

"भक्त"

श्रीतुलसीरामप्रभुप्रसन्न ।

श्री तुलसीराम प्रभु-

का

संक्षिप्त-चरित्र

[समस्त संसार के माया मोह का त्याग करके निश्चिन्त होकर एक मात्र परम-कल्याण स्वरूप श्री सच्चिदानन्द तुलसीरामप्रभु का स्मरण करते हुए जीवोंके कल्याणार्थ लिखना प्रारम्भ करता हूँ ।]

[१]"श्रीचेत्र परली-वैद्यनाथ" ग्राम में एक

---

१ - यह द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक ज्योतिर्लिङ्ग का स्थान है । इसे कान्तिपुरी भी कहा जाता है । यहाँ "श्री वैद्यनाथ" जी का मन्दिर बहुत ही सुन्दर और देखने-योग्य है । 'महाशिवरात्रि' को यहाँ बहुत बड़ा मेला (यात्रा) लगता है । यह गाँव दक्षिण-हैद्राबाद के बीड़ जिले में स्थित है । इस स्थान का बहुत बड़ा माहात्म्य है । बराबर यहाँ पर कोई न कोई साधु-सन्त-महात्मा-ज्ञानी सत्पुरुष जरूर रहते हैं । कहा जाता है कि— 'भक्त-मार्कण्डेय', 'सत्यवान-

" [१]रावल-मठ " है। अन्दाजन सौसाल पहिले इस मठ के

सावित्री', तथा राजा-श्रियाल (बाल-चिलिया) की घटनाएँ यहीं घटी हैं। जिनके चिह्न अभी उपस्थित हैं।

तात्पर्य यह कि इस क्षेत्र का माहात्म्य और दर्शन का फल अगम्य है। विशेषतः यहाँ पर जितने भी साधु-सत्पुरुषों का आविर्भाव हुआ है उनमें श्री सच्चिदानन्द तुलसीराम प्रभु को ही सर्व श्रेष्ठ कहा जाता है। वास्तवमें ऐसी 'विभूति' संसार में बहुत विरल होती है। और अव्यक्त रूपसे रहती है। जिसका प्रचार होना अति दुर्गम और लोगों के भाग्यपर ही निर्भर रहता है। ऐसी विभूति से 'श्री क्षेत्र परली' का माहात्म्य और भी सिद्ध होता है।

१. यह "मठ" नाथ साम्प्रदायिक अर्थात् मछिन्द्र नाथ-गोरखनाथ आदि महापुरुषों-के सम्प्रदायका है। इस की स्थापना पाँच सौ साल पहिले महान् योगीश्वर श्रीगुरु यमनाथ महाराज ने की थी। जिनकी समाधि यहाँपर विद्यमान है। जिन्होंने अपने प्रभाव से नारी को नर रूप में परिणत कर दिया था। उस 'नर' की भी स्मारक समाधि यहाँ मौजूद हैं। जिन्होंने किसी 'ब्रह्मराक्षस' से एक ही रातमें कुआँ खोदवा लिया था जिसका पानी बहुत ही मीठा और शक्तिवर्धक है।

इस 'मठ' के वर्तमान अधिकारी श्रीगुरु उद्धवनाथ महराज हैं। जा दर्शनीय मूर्ति और तेजस्वी है। इन्हींको इस 'मठ' के आदि स्थापक श्री यमनाथमहाराजजीको श्री महाप्रभु तुलसी राम महाराज के रूप में देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सुना जाता है कि पूज्यपाद श्री यमनाथ महाराजजीने स्पष्ट शब्दों में यह कहा था

अधिकारी श्रीगुरु धर्मनाथ महाराज थे। इन्हीं के कई शिष्यों में से श्री आत्माराम जी और श्री मञ्जुला देवी यह दम्पती बहुत ही गरीब शिष्य थे। जो "परली" से कुछ दूर गाँव "खंदार" के निवासी थे। जिनको कोई सन्तान नहीं थी। एक समय यह दम्पती बहुत ही व्याकुल होकर दीनतासे श्री गुरुचरणोंकी शरण में आये और रोते हुए सन्तान प्राप्ति का आर्शिवाद माँगने लगे।

'इसपर गुरुजीने दयामें आकर कहा'—"सन्तति होना यह अपने हाथ नहीं। यह सब ईश्वरीय लीला है। इसके लिए रोना या दुःख मानना ठीक नहीं।"

फिर शिष्यने कहा—"हे गुरुदेव! हमें निराश न कीजिए, यदि प्रथम पुत्र होगा तो यहाँ सेवामें अर्पण किया जायगा।"

'गुरुजीने कहा'—"हाँ···यह अपनी-अपनी इच्छा है! जाओ, दुःखी न बनो। रोते हुए बैठना यह मानव का

कि—"जब सातवीं पीढ़ी आयेगी तब मैं पुनः एक बार इस 'मठ'को साक्षी के रूप में अलङ्कृत करूँगा।" अब इस रावल मठको "श्री-तुलसीराम मन्दिर" नाम दिया गया है। इस मन्दिर में बारह माह भजन, आरती तथा प्रसाद हुआ करता है। मासिक-"पुण्यतिथि" भी आनन्द से हुआ करती है, और वर्ष में एक समय श्री "महाप्रभु" के पुण्यतिथि निमित्त-सप्ताहरूप में एक "महोत्सव" हुआ करता है। जो दर्शनीय और अत्यन्त लोक-हितकारी होता है।

धर्म नहीं है यह जरूर होता है कि अनन्य व्याकुलता में इच्छा-पूर्ण होती है।"

श्री गुरुजीका उपदेश सुनकर शिष्य को बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों शान्ति के साथ अपनें निवास स्थान "खंदार" पहुँचे। नम्रतासे नियमित कार्य करने लगे। आश्चर्य है कि कुछ रोज में 'मञ्जुला देवी' को गर्भ धारण का अनुभव प्राप्त हुआ और पति-पत्नी श्री आत्मारामजी और मञ्जुलादेवी को आनन्द प्राप्त हुआ। सारांश, सब तरहसे आनन्द-ही-आनन्द होने लगा। इसी आनन्द-मय समय में श्री मञ्जुलादेवी के उदर से—अपार महिमा धारी—सगुण ब्रह्म स्वरूप-सच्चिदानन्द परमात्मा श्री भगवान तुलसीराम प्रभु का अविर्भाव (जन्म) हुआ।

दम्पती श्री आत्मारामजी तथा मञ्जुलादेवी का प्रण था कि पहिला पुत्र गुरुदेव की सेवा में अर्पण किया जायगा। इस प्रण की रक्षा के लिए जहाँतक बच्चे का पालन करना जरूरी था—पालन किया। तदन्तर "श्री तुलसीराम" को सेवा में ला छोड़े और चले गये।

कुछ दिनों के बाद 'दम्पती' को सन्तति-प्राप्ति का अभाव दिखाई दिया। 'दम्पती' ने सोचा कि अब अपने को सन्तति दुष्प्राप्य है। ऐसी अवस्थामें वे दोनों फिर गुरुदेव की चरणोंमें आकर कहने लगे—"हे गुरुदेव! अब हमें सन्तति होना असम्भव है, अतः "तुलसीराम" को ही वापस दे दीजिये।"

इसपर 'गुरुजी ने आश्चर्य से कहा'—"यह तुम दोनों का कहना बहुत ही अज्ञान पूर्ण है। और यदि ले ही जाना चाहते होतो "तुलसीराम" भी बड़ा विचित्र ही है।"

आखिर, शिष्य को यह बात समझ न पड़ी, मोह के कारण 'श्रीप्रभुतुलसीराम' को वापस ही ले गये।

थोड़े ही दिन में श्री तुलसीराम प्रभु के विवाह की तयारी चली। तब एक समय एकाएक "श्रीप्रभु" ने बड़े जोर से शोर मचाया—जिसमें "श्रीप्रभु" का स्वरूप पूरी तरह पागल सा बन गया, वृत्ति की सुध-बुध न रही अर्थात् 'शरीर के कर्म-अकर्म का ज्ञान शून्य होने पर वे "जीवन्मुक्त" अवस्था को छोड़ कर "विदेहमुक्त" अवस्था को प्राप्त हुए।' 'लोग भले ही उन्हें पागल समझा करें।'

—यह आश्चर्य कारक घटना देखकर "श्री महाप्रभु" (श्रीतुलसीराम प्रभु) के माता-पिता को वैराग्य प्राप्त हुआ। जिसके कारण मोह माया नष्ट होकर ज्ञान-शक्ति द्वारा एक क्षण में वे दोनों मुक्त बने

[प्रेमियो! भगवान् की घटना बड़ी विचित्र होती है वे भक्तों के कारण आते तो हैं ही परन्तु, साथ-साथ अपने जन्म-सम्बन्धिक माता-पिता आदि का उद्धार (संसार से विमुक्तता) अजब ढङ्ग से करते हैं। देखिए, चाहे जिस किसी भी कुल में साधु सन्त महात्मा जीवन्मुक्तों का जन्म हो वे कुल धन्य हैं, वे स्थल रम्य हैं। यह तो हुई "जीवन्मुक्त" की बात। और "विदेहमुक्त" की बात तो अगम्य है!]

आश्चर्य है कि "विदेहमुक्त" अवस्था प्राप्त होने के बाद वे "महाप्रभु" उसी 'विदेह' रूप में चलते-फिरते सीधा "परली-वैद्यनाथ" आये। लोग कहने लगे "दीवाना आया"२। "रावल-मठ" में भी पता लगा कि "तुलसीराम" आया है। तब मठवालोंने "महाप्रभु" को मठमें लाने का प्रयत्न किया परन्तु, इससे क्या? "महाप्रभु" की लीला जो होनी थी!

तदन्तर, "महाप्रभु" कहीं भी बैठने लगे; पहाड़ोंपर, जङ्गलों में स्मशानों में, तीर्थों में, मन्दिरों में जहाँ मन आया सभी ओर मनमाना टहलने लगे। टहलते-टहलते जब गाँव में आते थे तब बच्चेलोग और वे समझ लोग "महाप्रभु" को छेड़ते थे! कोई बेकार बातें करता था तो कोई विनोद करता था। कोई काँटों में ढकेलता था तो कोई कंकड़-पत्थर मारता था! परन्तु, "महाप्रभु" किसी को कुछ कहते नहीं थे। वे अपनी ही धुन में मस्त इधर-उधर भागते रहते थे। किसीने कुछ खाने-पीने को दिया तो खा-पी भी लेते थे; ओढ़ने के लिए किसी ने कपड़ा दिया तो ओढ़ भी लेते थे। यदि किसीने कुछ नहीं दिया तो यों ही भूखे और नंगे ही (दिगम्बर ही) फिरते रहते थे। "महाप्रभु" को दिन और रात का अंशतः भी भेद न होने के कारण किसी भी समय जो कुछ भी किया करते थे।

[प्रेमियो ! अब उस समय की याद आती है तो उर भर आता है और भगवत्प्रेम (प्रभु प्रेम) की धड़क से जी रुकने लगता है, तथा पुकारने लगता है कि "हे भगवन ! इतनी सर्दी और गर्मी के दिनों में तू कहाँ और कैसे रहता था ? हम तो किञ्चित् मात्र सर्दी-गर्मी से (शीत-उष्ण से) उकता जाते हैं !"]

जब कभी महाप्रभु पानी में कूदते थे तब पन्द्रह-पन्द्रह मिनट तक भीतर ही डूबे रहते थे। कभी-कभी पहाड़ों पर या जङ्गलों में यदि कहीं सर्प दिखाई दिया तो उसको "बालकवृत्ति" से पकड़ लेते थे और घूमते-घूमते सहज ही गाँव में आ जाते थे। "महाप्रभु" के हाथों में सर्प देखकर लोग डरने लगते थे। जो लोग पहिले सताते थे वे भी डरके मारे पीछे सताना छोड़ दिये। इसी प्रकरण से लोगों ने "महाप्रभु" से इस प्रकार बातें करना शुरू किया—जैसे, "महाराज भोजन करो", "तुलसी राम भजन गाओ" आदि-आदि। 'परन्तु "महाप्रभु" को इस से क्या मतलब ?'

कोई अपने को सतावे नहीं, सब अपने को अच्छा कहे, सब भोजनादि की व्यवस्था करे या मुझ से डरे—इस उद्देश्य से तो "महाप्रभु", सर्प नहीं पकड़ लाते थे ! वे तो सहज ही ले आते थे। वे न किसी को डराते थे और न सर्प को कहीं छोड़ते थे, वैसे ही पकड़ कर कहीं भाग जाते थे।

कभी-कभी प्रातः काल में जब महाप्रभु किसी दुकान के चबूतरे पर बैठ जाते थे तब निश्चित था कि दुकान

मालिक को लाभ आवश्यक हो। एक समय का और एक विलक्षण प्रकरण (प्रसङ्ग) है। जो विशेष विचारणीय है।

किसी "नागपञ्चमी" के रोज कुछ लोगों ने "महाप्रभु" से कहा—"महाराज, झूलेपर बैठो।" आश्चर्य है कि, "महाप्रभु" को झूले पर बिठाते ही "महाप्रभु" ने भी खूब झूला चलाया। 'इतने में "एक" ने कहा', "महाराज हाथ छोड़ दो।" फिर क्या था, "महाप्रभु" ने दोनों हाथ छोड़ ही तो दिये! जिसके कारण "महाप्रभु" ऊपर से नीचे जमीन पर जोर से गिर पड़े। हाथों को जबरदस्त चोट लगी। लोग दुःख मानने लगे। परन्तु, तब भी "महाप्रभु" प्रसन्नता से उठ खड़े होकर भाग गये। अन्य समय लोग हाथों को देखते हैं तो परिस्थिति क्या है—हाथ दुरुस्त हैं। किन्तु हाथों में केवल कुछ मरोड़ है। वह हाथों का टेढ़ापन अन्त तक बना रहा।

इस प्रकार श्री "महाप्रभु" के 'सहज-चमत्कार' जब प्रतीति के रूप में लोगों के सामने आये तब लोगों को पहचान हुई कि श्री "महाप्रभु" पागल नहीं हैं। ये तो साक्षात् परमात्मा स्वरूप हैं। अब "महाप्रभु" पर लोगों की अच्छी भावना बैठ गई। आखिर यहाँ तक हुआ कि, प्रथम पूज्य श्री गणेशजी से भी बढ़कर "महाप्रभु तुलसी भगवान्" को लोग चाहने लगे। विवाह आदि बड़े-बड़े मङ्गल कार्यों में प्रथम "महाप्रभु" को ढूँढ़ कर लाने लगे। इनमें विशेषता यह थी कि, जिसका पूर्व सञ्चित अच्छा

होता या जिसका भाग्य बड़ा होता उसी को "महाप्रभु" मिल जाते। सबको नहीं।

मिलना या न मिलना, करना या न करना, होना या न होना--यह सब अखण्ड चैतन्य शक्ति द्वारा ही हुआ करता था, न कि "महाप्रभु" जान बुझकर करते थे। उनकी अवस्था तो सहजावस्था थी। जो कुछ भी होता वह सहज ही होता। मात्र, जीवों के कल्याणार्थ ही होता—ऐसी विचित्र अर्थात् अनिर्वचनीय (विदेह) अवस्था चल रही थी कि अकस्मात् "महाप्रभु" को दो दिन का ज्वर हुआ। जिस ज्वर में "महाप्रभु ने", "खराब शब्द कहना", "गालियाँ देना," "विकृत-मुखध्वनि" करना, किसी के नजदीक आने पर उसे मारना आदि अपने भयानक गुणों को सहज रूप में प्रगट किया। यह देखकर लोगों ने कहा—"अधिक ज्वर में मनुष्य बकता ही रहता है कोई डरने की बात नहीं। चलिए, इनकी स्वस्थता की व्यवस्था की जाय।" सारांश यह कि "महाप्रभु" पर लोगों की अति श्रद्धा होने के कारण लोगों ने "महाप्रभु" के शरीर सुव्यवस्था का विचार किया और "महाप्रभु" को 'रावल-मठ' में ला छोड़ा गया। जहाँ, बचपन ही में "महाप्रभु" को अर्पण किया गया था।

आश्चर्य है कि "महाप्रभु" को मठ में ला छोड़ते ही तत्काल प्रकृति ठीक हो गई। परन्तु "मार-पीट" में और भी वृद्धि हुई। हो सकता है कि इस भयानक गुणों की वृद्धि और "मठ में" आ बैठना इसी के लिए ज्वर का आगमन

हुआ है। उपरोक्त, सहजअवस्था (विदेह स्थिति) से तो यही सिद्ध होता है कि ज्वर उसका निमित्त बनने आया था।

[प्रेमियो ! विशेष ध्यान रखो—"विदेह स्थिति में जो कुछ भी होता है वह एक मात्र जीवों के कल्याणार्थ ही 'अगम्य-निमित्त' होता है।"]

और भी यह आश्चर्य है कि जिसका कोई वर्णन नहीं हो सकता। श्री "महाप्रभु" इतने घूमने-फिरनेवाले होकर भी उक्त निमित्तसे "मठ" में लाने के बाद खुद कभी मठ के बाहर गये नहीं। जब कभी किसी कार्य के निमित्त बाहर का बुलावा आता था तो "मठ" के ही पुजारी लोग डरते डरते ले जाया करते थे। तब भी "महाप्रभु" की मस्ती पर (लहर पर)।

राजा-रङ्क, उच्च-नीच, साधु-भोंदू, योगी-रोगी, त्यागी-भोगी, पुण्यात्मा-पापात्मा, अच्छा-बुरा आदि कोई भी हो उन सबके प्रति "महाप्रभु" की दृष्टि समान थी। वह दृष्टि लौकिक अलौकिक के अतीत अभिव्यक्त न होने वाली ऐसी कल्याणमयी थी।

एक समय की बात है—रियासत दक्षिण-हैद्राबाद के प्रधान महाराजा किशन प्रसादजी अपने कुटुम्ब-परिवार सहित केवल "श्री वैद्यनाथ" जी का दर्शन करने "श्री क्षेत्र-परली" आये। प्रधान जी को पता लगा कि यहाँ "दर्शन-योग्य" एक महापुरुष हैं। तब प्रधान जी उसी क्षण

श्री तुलसीराम प्रभु का दर्शन करने आये। जब दर्शन करने लगे तब एकाएक "महाप्रभु" ने उन्हें मारा और गालियाँ देना शुरू किया। निरभिमानी, ज्ञानी, नम्र तथा प्रजापालक महाराजा किशन प्रसाद जी ने "धन्य-धन्य" कहते हुए शरण पूर्वक "महाप्रभु" के सामने "प्रणामी" रखकर प्रणाम किया।

'सभी लोग आश्चर्य करने लगे। इधर-उधर सर्वत्र "धन्य-धन्य" गूँज उठी।'

कुछ दिनों के बाद—जङ्गल में एक निर्धन तथा गंदे आदमी को सर्प ने डँस लिया तब वह आदमी "महाप्रभु" को पुकारते हुए, "तुलसीराम महाराज!" "तुलसीराम महाराज!" कहते हुए गिरते-पड़ते मठ में आ खड़ा हुआ। और आक्रोश से "महाराज!" कहकर प्रभु चरणों में बे-होश होकर गिर पड़ा। थोड़ी ही देर में लोग देखते हैं तो क्या! वह 'आदमी' नींद से जाग उठा मालूम पड़ता है। सब लोग आश्चर्य चकित हो उठे। वह 'आदमी' आज भी जीवित है और अब भी "मठ" में दर्शनार्थ आया करता है।

"महाप्रभु" की महिमा बढ़ने लगी। दूर दूर के लोग दर्शन को आने लगे। "महाप्रभु" के अद्भुत वेग (लहर) के कारण लोग दूर से ही दर्शन लेने लगे। जो लोग फल-मिष्टान्न-भोजन आदि भोग लाते थे वे डरते-डरते "प्रभु" के सामने रख देते थे। इसको "महाप्रभु" स्वीकार करते थे

(खा-पी लेते थे) या वैसे ही रहने देते थे। यदि इतने में वेग (लहर) आजाय तो इधर-उधर फेंक भी देते थे। सामने रखा हुआ चाहे विष हो चाहे अमृत हो, खट्टा हो या मीठा हो, कड़वा (सड़ा) हो या स्वादिष्ट हो, कच्चा हो या पक्का हो, मृदु हो या कठोर हो एवं सोना-मट्टी आदि कुछ भी हो इन सबके साथ "महाप्रभु" का व्यवहार समान हुआ करता था। अर्थात् मनुष्यादि सम्पूर्ण चराचर तक में "महाप्रभु" का व्यवहार (सहज कर्म) अनिर्वचनीय था।

तात्पर्य यह कि "श्री महाप्रभु" को वेग (लहर) आने पर वे किसी को भी मार-पीट देते थे और वस्तुओं को इधर-उधर कर देते थे। यहाँ तक कि दर्शन को आनेवालों को कभी कभी पत्थर से भी मारते थे, जो कुछ भी हाथ में आता चाहे, फल-फूल, बरतन, लाठी आदि कुछ क्यों न हो उसी से मार देते थे। यदि कोई समीप मिल गया तो हाथों से ही मारते थे, और इधर-उधर खूब लुड़काते थे।

एक दिन महान् विद्वान्-ज्ञानी तथा ब्रह्मनिष्ठ पुरुष— "[१]श्री वामन राव कवडी" (तारमास्टर) "श्रीमहाप्रभु"

---

१. ये परलो-पोष्ट आफिस में एक कुशल तार-मास्टर बनकर आये थे। इनका अधिक समय "महाप्रभु" की सेवा ही में बीतता था। इन्होंने, ही "महाप्रभु" की सेवा में भजन की प्रथा कायम की। जो भजन अब भी बारह माह सायंकाल के समय दो घण्टे हुआ करता है। इन्होंने, "श्री महाप्रभु" के सम्बन्ध में कुछ

के दर्शन को आये। ये "महाप्रभु" को देखते ही मुग्ध हो-गये, और बड़े प्रेम के साथ निडरता से "महाप्रभु" के समीप जाकर शारीरिक सेवा करने लगे। इसके बाद ये ब्रह्मनिष्ठ (तारमास्टर) "महाप्रभु" की सेवा में हररोज आने लगे और भजन गाने लगे।

"श्री महाप्रभु," वेग (लहर) में आकर इस ब्रह्मनिष्ठ (तारमास्टर) को इतना मारते थे, जिस मार से ब्रह्मनिष्ठ वामनराव जी का मुँह लाल हो जाता था। परन्तु, वे ब्रह्मनिष्ठ सहनशक्ति से किञ्चित् भी मुँह को नीचे न करते हुए प्रसन्नता पूर्वक प्रेममय दृष्टि से लगातार "महाप्रभु" की ओर देखते रहते थे। और 'कहते थे'—"[१]माँ! हाथ दर्द देगा।" तब भी "महाप्रभु" का वेग (लहर) कभी कभी हटता नहीं था; वैसे ही मारते रहते थे और विचित्र ढङ्ग की गालियाँ सुना देते थे। और कभी, तत्क्षण शान्त होकर हँस देते थे और गुन-गुनाने लगते थे।

भजनों की रचनाएँ भी की हैं। रचनाएँ बहुत ही मार्मिक हैं, जो महाराष्ट्र भाषा में हैं। जिसमें से "आरती" का भाषान्तर इस ग्रन्थ में दिया गया है। अब ये ब्रह्मनिष्ठ (तारमास्टर) कृत-कृत्य हो गये। इनकी प्राण ज्योति "महाप्रभु" की ज्योति में विलीन हो गई।

१. वास्तव में "माँ" नाम कितना प्यारा है। श्री "महाप्रभु" को दी हुई यह "माँ" संज्ञा योग्य है। जिसका प्रेम अखण्ड है! "इसी समय से सभी लोग "महाप्रभु" को "माँ" के नाम से पहचानते हैं और पुकारते हैं।"

श्री ब्रह्मनिष्ठ (तार मास्टर) के देखा देखी पीछे और कुछ लोग "महाप्रभु" के समीप जाकर सेवा तथा भजन करने लगे। दैव-योग से कुछ दिनों के बाद ये ब्रह्मनिष्ठ (तार मास्टर) किसी विशेष कारण से "परली" छोड़ चले गये ! इसी अवसर में इस दीन पतित-अन्यायी पामर का (मेरा) भाग्य खुला कि इसने (मैंने) श्री सच्चिदानन्द तुलसी राम प्रभु का (महाप्रभु का) दर्शन किया ! फिर मैंने देखा और सोंचा तो क्या—

"सब मङ्गल-ही-मङ्गल"—"श्री महाप्रभु" का स्वरूप बहुत सुंदर और मनोहर है। जो रूप देखते ही दुःखी भी आनन्दित होता है, रोगी भी निरोग बनता है, रोते हुए को भी हँसी आती है, और साधारण साधक भी श्री सच्चिदानन्द सागर में तैरने लगता है। वर्ण—साक्षात् विष्णु भगवान् सा साँवला है। और कद ठेंगणा है। मुँह में दाँत नहीं हैं। उम्र ६० साल से कम नहीं होगी। चेहरे के नीचे गले को देखने पर बुढ़ापे की निशानी स्पष्ट प्रतीत होती, इसके अलावा शरीर के अवयव को देखने से २५-३० साल की उम्र है ऐसा प्रतीत होता—अर्थात् "महाप्रभु" की शरीर-कान्ति बहुत ही तेजस्वी और शोभापूर्ण है। जो नजर ठहरने नहीं देती। शरीर पर 'मेखला' और कान-टोपी के सिवा कुछ नहीं। उनके घर के नातेदारों में कोई बचा नहीं मालूम होता। "महाप्रभु" किसीसे बात करना जानते ही न थे,

यदि किसी ने बात की तो "हूँ" कह देते थे। पर रहते थे सदा अपनी ही धुन में।"

कई प्रकार से "महाप्रभु" की असीम शक्ति मुझ जैसे दीन "भक्त" की दृष्टि में और सोच-समझ में प्रवल रूप से आने पर मैं पूर्ण रूप से "महाप्रभु" पर मुग्ध हुआ और हररोज दर्शन करने लगा; संसार का ध्यान छोड़कर "महाप्रभु" ही की सेवा में रहने लगा। परन्तु मुझ में अज्ञान होने के कारण "महाप्रभु" के विशाल रूप का मुझे भय बना रहा, जिसके कारण मैं सेवा में दूर-दूर रहने लगा। मैंने अपनी बेवकूफी के कारण यह समझा नहीं था कि– "किसी प्रकार से भय न रखते हुए "महाप्रभु" की सेवा करनी चाहिए।" जब निम्नलिखित प्रकरण मेरी नैनोंने देखा और हृदय भी झुका तब मेरे मस्तिष्क में यह आया कि—"किसी प्रकार भय न रखते हुए निडरतापूर्वक "महाप्रभु" की सेवा करनी चाहिए।"

वह प्रकरण यह है कि "एक समय मिठास के कारण श्री "महाप्रभु" की चरणों में सुर्ख चींटियाँ इतनी लग गईं कि कुछ दूर से देखने पर एक लाल कपड़ा सा प्रतीत होता था! दोनों पैर के पञ्जों को चींटियों ने इतना खा लिया कि खून बहने लगा, बदबू आने लगी! आखिर दोनों पञ्जें सड़ गये। परन्तु, "श्री महाप्रभु" पैरों को हिलाते तक नहीं थे; सदा अविचल (चुपचाप) बैठे रहते थे।"

पैरों की जखम कों देख कर भक्त-लोगों ने अति व्याकुलता से, निडरतापूर्वक जखम ठीक होने के लिए व्यवस्था की, और फिर वैसी स्थिति दोबारा होने न दी।

ऐसी बहुत सी आश्चर्य घटनाएँ भक्तों को "महाप्रभु" के निकट देखने को अनायास मिला करती थीं।'

एक समय की वात है जब कि कोई न कोई भक्त "महाप्रभु" की सेवा में अयश्य रहता था तव एक दिन प्रातःकाल "महाप्रभु" के बिछौने से और तकिये की बाजू से बड़े बड़े दो बिच्छू निकले। जिसमें से एक बिच्छू मैं अपने हाथ निकाला और एक बिच्छू दूसरे एक भक्त ने निकाला। न जाने, रात भर बिछौने में खेलते हुए बिच्छूओं ने "महाप्रभु" को डङ्क मारे या नहीं! कोई कैसे जाने?

जिनको अपने शरीर तक की सुध-बुध नहीं; जिनको स्नान करवाना, कपड़े पहनाना, खाने-पीने को देना, सर्दी में कपड़ा उढ़ाना, गर्मी में हवा करना आदि जो कुछ करना होता सब कुछ भक्तों को ही करना पड़ता; रात-दिन सेवा में रहनेवाले तक के नाम का जिनको पता नहीं; वास्तव में जिनको स्पर्श तक का अनुभव नहीं—ऐसे महान् लीला धारी-विदेह-मुक्त परमात्मा "श्री महाप्रभु" हमें क्या पहचानते और उन बिच्छुओं के वारे में हमें क्या सुनाते! ये "महाप्रभु!" तो बिलकुल कमल-दल के समान निर्लेप थे।

लोग लाभ की इच्छा से वेधड़क "महाप्रभु" के समीप जाने लगे थे। क्योंकि, मार खाने के लिए, जूठा (मुँह का अन्न) प्रसाद खाने के लिए और चरण का तीर्थ पीने के लिए लोग लालायित रहते थे। परन्तु, आश्चर्य यह था कि—जिन्हें उत्कृष्ट काल प्राप्त होता, जिनका भाग्योदय होता उन्हें ही मार, प्रसाद या तीर्थ-जल मिलता था। अन्य को नहीं।

वास्तव में, जिन्होंने "महाप्रभु" की मार खाई, जूठा-प्रसाद खाया और चरणों का तीर्थ पीया उन सबका जीवन कृत-कृत्य हुआ। कितने ही निःसन्तानों को इससे पुत्र-प्राप्ति हुई, निर्धनों को इससे धन मिला, दरिद्रों को वैभव प्राप्त हुआ, दुःखी को भी सुख मिला अर्थात् साधारण लोगों को भी विशेष फल प्राप्त हुआ।

प्रेमियो! जब साधारण लोगों पर भी भक्त-वत्सल भगवान् (महाप्रभु) की कृपा होती है, तब भक्तों पर क्यों न हो? "वे अन्तर्यामी होने से भक्तों पर सदा प्रसन्न रहते हैं और अन्तर्यामी होकर ही भक्तों को अपने बाहुबल पर खड़ा करते हैं तथा भक्तों को प्रेरणा देते हैं—भक्तों की रक्षा करते हैं, भक्तों को क्षमा करते हैं एवं सत्य, दया क्षमा और शान्ति देते हुए भक्तोंपर पूर्ण कृपा रखते हैं।"

अन्त काल

श्री "महाप्रभु" के अन्तकाल का अर्थात् साकार रूप से निराकार रूप में विलीन होने का जब समय आया तब "महाप्रभु" ने भक्तों में ऐसी श्रेष्ठ प्रेरणा की कि जिससे क्षण-क्षण सत्सेवा करने की ओर भक्तों का ध्यान आकृष्ट हुआ। जिस ध्यान से भक्तों को अपने शरीर की सुध-बुध न रही, वे जान तोड़कर सेवा करने लगे, आखिर यहाँ तक हुआ कि "महाप्रभु" से भक्तगण एक क्षण के लिए भी दूर नहीं होते थे। और इन्होंने "श्री महाप्रभु" के शरीर संरक्षणार्थ चन्दा कायम किया। जनता ने भी बड़े आनन्द से चन्दा देना स्वीकार किया। प्रतिमास दो-अढ़ाई सौ रुपये जमा होते थे। जो "महाप्रभु" की ही "सेवा में" लगाये जाते थे। इस तरह जब "महाप्रभु" की सेवा से भक्तगण दिव्य आनन्द पाने लगे तब एकाएक किसी कारण से भक्तों को मजबूरी से उक्त "सेवा" को रोकना पड़ा।

[प्रेमियो! अब भक्तोंकी उस समय की दशा का वर्णन यदि करूँ तो लिखना रुक जायगा। और हृद्गति रोध (हार्ट-फेल) से बचने की कोशिश करनी पड़ेगी। क्यों कि अन्यथा मेरे भगवान् "महाप्रभु" का यह अवशिष्ट सत्सेवा कार्य अधूरा हो रह जायगा। अतएव उस दशा का वर्णन मैं नहीं करता। मुझे क्षमा कीजिए।]

"श्री महाप्रभु के लीला की गति कैसी है कौन जाने!

"स्त्री और पुरुष क्या हैं और किसलिए हैं इसकी भी आपको पहचान नहीं थी। तथा रात और दिन, भेद-अभेद, धर्म-अधर्म, शुभ-अशुभ, अच्छा-बुरा आदि कुछ भी उनके निकट नहीं था। विधि-निषेध क्या हैं और किसलिए हैं इसकी भी कोई पहचान नहीं थी। सारांश यह कि "श्री महाप्रभु तुलसी भगवान्" न ज्ञानी थे, न साधु-सन्त-महात्मा थे, न योगी थे, न भोगी थे, न तपस्वी थे, न भक्त थे, न साधक थे, न पगले थे, न और कोई थे। वे तो एक मात्र···नित्य-निरन्तर त्रिगुण निराकार परब्रह्म परमेश्वर के साक्षात् सगुण स्वरूप थे।

"श्री महाप्रभु" की प्रत्येक क्रिया (चलन) कल्याण-कारिणी थी। जिन क्रियाओं में कुछ विशेषता अवश्य भरी रहती थी। वे क्रियाएँ जीवों के कल्याणार्थ चैतन्य शक्ति द्वारा आप-ही-आप हुआ करती थीं।

एक समय का अनुभव है—जब भक्त लोग "महाप्रभु" के सामने बैठकर भजन गा रहे थे, जिसमें "महाप्रभु" भी आनन्द की लहर में डोल रहे थे। डोलते-डोलते "महाप्रभु" एकाएक स्थिर हो गये और "विकृत-मुखध्वनि" करने लगे। यह देखकर भक्त लोग आश्चर्यचकित हुए। तब पता लगा कि, 'गाँव के एक महल्ले में बहुत ही बड़ी आग लगी है, जिसको न बुझाने से सारा महल्ला खाक हो जायगा।' आखिर, लोगों ने कई प्रयत्नों से आग शान्त कर दी। इधर "महाप्रभु" भी शान्त हो गये और

मन-ही-मन गुनगुनाने लगे, मानो जैसे अस्फुट रूप से यह कहने लगे कि, "मैं कहता हूँ, पर कौन सुनता है।"—इस घटना से सिद्ध हुआ कि 'आने वाले घोर विघ्न को हटाने का यह "विकृत मुखध्वनि" संकेत था।

[प्रेमियो ! "महाप्रभु" की प्रत्येक क्रिया (चलन) में छिपे हुए रहस्य का पार कौन पा सकता ? परन्तु फिर भी कुछ क्रिया (चलन) के कई अनुभव हैं, जो बहुत ही अधिक महत्त्व के हैं। उनको दिखाऊँ तो 'कलियुग-न्याय' से अविश्वास होगा और मुझमें पाठकों को अभिमान का भ्रम भी होगा ! अस्तु।]

श्री "महाप्रभु" की सम्पूर्ण क्रिया में (सहज चलन में) आनन्द-ही-आनन्द भरा रहता था। उनके डोलने में भी आनन्द, गुनगुनाने में भी आनन्द, गालियों में भी आनन्द, मारने में भी आनन्द, क्रोध में भी आनन्द और उनके हिलने न हिलने में भी आनन्द अर्थात् सब आनन्द-ही-आनन्द।

—उपरोक्त अव्यक्त तथा अनिर्वचनीय आनन्द के कारण दर्शन की भीड़ होने लगी। और, "हे माँ! हे महाप्रभो !, हे भगवान् !, हे परमात्मा !, हे सच्चिदानन्द !, हे देव !, हे नाथ !, हे गुरो !, हे शम्भो !" आदि-आदि प्रेम भरी संज्ञाओं से लोग पुकारने लगे। अधिकतर "माँ" ! के नाम से ही पुकार होने लगी।

"श्री महाप्रभु" के मारने-पीटने से, उच्छिष्ट (जूठे) प्रसाद से, चरण-तीर्थ से विशेष लाभ होने के कारण कई

चलन" को और "[1]सहजोद्गारों को" देखते, सुनते तथा सोचते रहे। इस समय ऐसा प्रतीत होता था कि—"भक्तों के हृदय को विजली छू रही है!"

आखिर द्रष्टा-दृश्य और दर्शन यह त्रिपुटी वन्द होकर सभी की भावना एक मात्र 'प्रभु-मय' वन गई और "वैशाख वदि ४ शके १८७० दि० २७ मई १९४८ [2]गुरुवार" (बृहस्पतिवार) को प्रातःकाल श्री "महाप्रभु" की दिव्य ज्योति,—अव्यक्त-अत्तय-अखण्डैकरस चैतन्य में विलीन हो गई।

"पुण्यतिथि"

श्री "महाप्रभु" का पुण्य-दिन (तेरहवाँ-दिन) मनाना जरूरी था। परन्तु, देश की परिस्थिति इतनी विकट थी कि जिसका कोई वर्णन नहीं। चारों ओर अन्न का अभाव था, लोग 'किंकर्तव्य विमूढ' थे। रजाकारों का वह जमाना था कि—माता अपने वेटे को और वेटा अपनी 'माँ' को प्रेम-भरी आखोंसे एक त्तण के लिए देखेंगे इसका भरोसा नहीं था। गुण्डाशाही की भयानक सत्ता फैली हुई थी। वे

---

१. "शरीर का भजन कर देना।" "हमारा भजन खतम हुआ अब तुम करो।" अब जाना है ध्यान रखो।" "कैसी मजा है।"—आदि-आदि।

२. "इस दिन की बहुत विशेषता रही। साथ-साथ वदि-गणेश चतुर्थी की भी।"

'रज़ाकार' यह समझते थे कि हम से बढ़कर दुनिया में कोई ताक़त और सत्ता नहीं। मानो वे अपने ही घमण्ड में 'भगवान्' की सत्ता तक को भूल गये थे।—ऐसी अति विकराल परिस्थिति में श्री "महाप्रभु" की सत्ताने 'अशक्य को शक्य' कर दिखलाया। जो कार्य शान्त परिस्थिति में भी होना अत्यन्त कठिन था। जिस कार्य को धनाढ्य-लक्षाधीश राजा तथा लौकिक धन-कुवेर तक नहीं कर सकते थे वह कार्य "महाप्रभु" की शक्ति ने यों ही किया! ऐसी जबरदस्त शक्ति क्या थी? वह शक्ति यही थी कि श्री "महाप्रभु" के बारे में लोगों का प्रेम!

वस्तुस्थिति यह है कि—प्रेम का कार्य प्रेम से ही होता है न कि धन से। हाँ धन का कार्य प्रेम कर सकता है परन्तु, प्रेम का कार्य, धन कदापि नहीं कर सकता।

श्री "महाप्रभु" की प्रेममयी कृपा से इस पुण्यतिथि महोत्सव के निमित्त गाँव में "नगर-भोजन" की पुकार दी गई और जगह-जगह विज्ञापन लगाया गया।

इस पुण्य-तिथि में श्री "महाप्रभु" की चैतन्य-शक्ति द्वारा 'प्रकृति' तक ने इस यज्ञ के निर्वाह में साथ दिया, अर्थात् अन्तर्यामी देव रूप इन्द्र-सूर्य-वायु-वरुण अभ्र आदिने भी अपने-अपने कर्तव्य को श्री "महाप्रभु" सम्बन्धी इस दिव्य पर्व के अवसर पर ठीक से चलाया।

कार्यारम्भ के आदि में (भट्ठियों पर अन्न चढ़ाने के पहिले) इतनी वर्षा बरसी जिससे सारी सड़कें (लोगों के भोजनार्थ बैठने की जगह) धुल गईं—

एक दिन बीता या न बीता कि भक्त-लोग पहली तरह सेवा में फिर लग गये। एक दिन की व्याकुलता के कारण भक्त लोग अनन्य प्रेम से "महाप्रभु" के रूप (शरीर) को निहारने लगे। जब गौर से देखते हैं तो शरीर पर कहीं कहीं छोटी-छोटी फुन्सियाँ आ गई हैं। ये फुन्सियाँ कम नहीं हुईं, दिन-ब-दिन बढ़ने लगीं। "सेवा" करते-करते पेट के निचले भाग में एक सख्त बड़े फोड़े का भी अचानक पता चला' जो दो दिन में फूल उठा। जिसको दबाने से उसमें से लाल, सफेद-काली गुठलियाँ निकलती थीं और खून की पिचकारी सी चलती थी! जिसको देखते ही देखने वालों का कलेजा फटने लगता था और शरीर थर्रा उठता था परन्तु, "श्री महाप्रभु" की धन्य वह सहनशीलता कि वे "हूँ" या "चूँ" भी नहीं करते थे, या किसी को कुछ कहते भी नहीं थे; आप अपने ही में मस्त रहते थे अर्थात् दुःख से विचलित नहीं होते थे। ऐसी अवस्था में "महाप्रभु" को ज्वर भी चढ़ आया। इस विलक्षण ज्वर को देखकर भक्त लोग भयभीत हो उठे और डॉक्टर साहब को बुला ले आये। "महाप्रभु" को दूर से देखकर 'डॉक्टर' ने कहा – "इनको क्या हुआ है, ठीक तो है!" जब 'डॉक्टर' ने समीप जाकर शरीर स्थिति की जाँच की और 'थरमा मीटर' से ज्वर देखा तब डाक्टर-साहब फीके पड़ गये, और आखों से आँसू बहाने लगे तथा कहने लगे—"श्री 'महाप्रभु' की इस शारीरिक स्थिति को डाक्टर या वैद्य क्या देखेगा?"—"दवाई से ठीक करने की आशा रखना मूर्खता

है।"—"अब 'महाप्रभु' को ज्वर की मात्रा इतनी बढ़ी है कि इससे तो नवजवान भी क्षण भर नहीं बच सकता—परन्तु, श्री "महाप्रभु" तो उठते-बैठते और गुन गुनाते ही हैं !" अब मेरे जैसा साधारण मनुष्य क्या दवा दे सकता !" इतना कह कर डॉक्टर साहब चले गये। इसके बाद—

श्री "महाप्रभु" की शारीरिक थिस्ति के बारे में श्री-[1]माधवानन्द महास्वामी जी ने कहा—"श्री 'महाप्रभु' के बारे में कुछ कहा नहीं जाता, वह अनिर्वचनीय शक्ति है उसका कौन पार पा सकता ? मनुष्य का कर्तव्य है उनकी सेवा करे।"

इस पर और कोई उपाय न रह जाने के कारण भक्त लोग भक्त सहायक "महाप्रभु" ही पर निर्भर रहकर [2]"चैतन्यमय

---

१. ये एक ऐसे बड़े सिद्ध पुरुष थे जिनको सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त थीं। और जो ज्ञानी तथा जीवन्मुक्त पुरुष थे। इस वर्ष ही ये महापुरुष समाधिस्थ होकर मुक्त हुए हैं। सम्प्रति इनका स्थान (आसन) 'दत्तवाडी" ('परली' से ८ माइल की दूरी पर का गाँव) में स्थित है। इनकी भी शिष्य परम्परा बहुत बड़ी है।

२. "पूर्ण दिशाओं में धुन्धलापन," विशेष तारा का टूटना" स्वप्न दृष्टान्त में—श्री महादेव जी तथा श्री विष्णु जी का पहरा", "भक्तों को महान् प्रतीति दिलाना",—आदि-आदि।

दाने और अन्य पशु-पक्षियों के लिए गेहूँ, चावल, जवार, फल्ली, दाल आदि सभी अन्न एकत्र करके गाँव में और गाँव के बाहर जङ्गलों में, पहाड़ों पर सब जगह डाला गया।

'छोटे-छोटे बच्चों के लिए तक (शिशुओं के लिए) दूध पहुँचाने का विचार चल रहा था। परन्तु, यह निर्णय हुआ कि—"अन्न से ही माता के थन में दूध बनता है, जो 'बच्चों' को पहुँचता ही है"।'

इसके अतिरिक्त भजन आदि के कार्यक्रम भी बड़े आनन्दोत्साह के साथ सम्पन्न हुए। ऐसी निर्दोष शान्ति दायिनी पुण्यतिथि पहिले कभी नहीं हुई और भविष्य में भी नहीं होगी—"धन्य-धन्य है 'श्री तुलसीराम प्रभु' की" इस तरह सभी ओर लोग कहने लगे। दूर दूर देहातों तक श्री "महाप्रभु" के पुण्य-दिन का गौरवगान होने लगा। और भी, समय-समय पर हुआ करता है। तात्पर्य यह कि सभी ओर आनन्द-ही-आनन्द छाया।

जयतुलसी

"भक्त"

श्री तुलसीराम प्रभु प्रसन्न

भजनानुक्रमणिका

प्रथम भाग

इसके बाद भट्टियों की पूजा आदि विधि करके अन्न से भरे हुए बड़े-बड़े बर्तनों को भट्टियों पर चढ़ाया गया। खुली जगह में ही 'पाक' आरम्भ किया गया। इतने में आकाश-मण्डल घोर बादलों से छा गया। अविश्वासी जन घबरा गये। परन्तु, "महाप्रभु" की लीला के कारण थोड़ी देर में अभ्र (बादल) यों ही हट गये। यह देखकर सभी लोग आश्चर्य करने लगे।

'पाक' तयार हुआ। भोजन की पंक्तियाँ बैठने को थीं कि 'हवा' आई और झाड़ू दे चली गई। झाड़ू देने का काम वायु-देव के सहारे हो गया। उसी क्षण इन्द्रदेव ने आवश्यकतानुसार पानी का छींटा भी दिया—जहाँ लोगों को पानी सींचने की आवश्यकता न रही। सभी लोग चकित हो गये। सवेरे दस-ग्यारह बजे का समय था कि भोजन पाने के लिए लोगों की पंक्तियाँ एक के बाद एक उठने-बैठने लगीं। दोपहर की धूप से लोग परेशान न हों इसलिए सूर्य-देव स्वयं मेघ में छिप गये।

[प्रेमियों! अविश्वास मत करो। सभी बातें अनुभूत हैं। साक्षात् "महाप्रभु" के दर्शन से धन्य-धन्य बनी हुई इन मेरी आँखों ने भी देखा है। ये बातें न कल्पित हैं या न दन्त कथाएँ हैं। आप यह कहेंगे कि "ऐसा कहीं होता है?" परन्तु अवश्य हुआ करता है। विचार करो, मनुष्य में एक ऐसी चैतन्य शक्ति है कि वह जो चाहे सो कर दिखला सकता है। परन्तु, उचित ज्ञान का अभाव होने के कारण मनुष्य को अशक्य सा दिखाई देता है। वस्तुतः,

मनुष्य के लिए कोई बात अशक्य नहीं है - कारण मनुष्य में चैतन्य-शक्ति एक जबरदस्त शक्ति है और जिसका कोई पार भी नहीं है।—'यही चैतन्य-शक्ति चेतनरूप "महाप्रभु" में पूर्ण रूप से थी।' आप सूक्ष्म रूप से विचार करिए। यदि इतने पर भी संशय या भ्रम रह जाय तो महानुभवों-महात्मा-ज्ञानी-सिद्ध गुरु जनों से पूछें। बस, इस विषय में मैं और कुछ कहना नहीं चाहता !]

सारांश यह कि, श्रीतुलसीराम प्रभु का पुण्य-दिन महोत्सव बहुत ही प्रभावक रहा। जिसमें हिन्दू-मुसलमान आदि सभी जनोंने आनन्द और उत्साह से भाग लिया। ग्यारह घण्टे में पच्चिस-हजार (२५०००) मनुष्योंने "मिष्टान्न-भोजन" प्राप्त किया। राजा से रङ्क तक ; उच्चसे नीच तक एवं ब्राह्मण से क्षुद्रतक सभीने श्री "महाप्रभु" का लाभ-दायक, विघ्न-हारक, शान्ति-कारक, आनन्द-दायक 'प्रसाद' सुव्यवस्थित रूपसे ग्रहण किया। 'और अन्य'— "ब्राह्मणों को "श्री वैद्यनाथजी" के मन्दिर में, मारवाड़ीयों को श्री बालाजी के मन्दिर में, वीरशैवों को श्री गुरुलिंग स्वामी जी के मन्दिर में, जैनों को जैन मन्दिर में, राजपूतों को और एक बालाजी के मन्दिर में, और मुसलमानों को एक सिनेमाथिएटर में "सोधा" दिया गया।"

यहाँ तक कि मूक-प्राणियों को भी श्री "महाप्रभु" का अगम्य-प्रसाद पहुँचाया गया। जैसे—चीटियों के लिए बाजरा के आटे में घी और शक्कर (चीनी) मिलाकर, गाय-बैल-भैंस आदि के लिए घास, भेड़ बकरियों के लिए

मङ्गलाचरण

जय गुरु जय जय................. ॥
प्रभु तुलसी गुरु शुभ मङ्गल गुरु ॥ टेक ॥
अनुपम अविगत अविकल अविचल ॥जय गुरु०॥
सुखकर दुखहर जयकर भयहर।
भ्रमहर श्रमहर मनहर भवहर।
शान्ति-क्रान्ति कर भेद-भ्रान्ति हर ॥जय गुरु०॥
भक्ति-ज्ञान-प्रद विमल विकासक।
चालक द्योतक प्रेरक तारक।
कलिमल-दाहक अग-जग-नायक ॥जय गुरु०॥
"भक्त"-दयाकर कार्य सफल कर।
आस पूर्ण कर क्षमा-कृपा कर।
मन-संशय-हर मङ्गल मय रे! ॥जय गुरु०॥

श्री सच्चिदानन्द तुलसी प्रभुजी ।
सद्भक्त के नाथ तुम हो गुरुजी ॥

प्रथम-भाग

(आरम्भ)

भक्तों का है प्रणाम प्रथम श्री गणेशा।
भगवान् तुलसीराम प्रभु पूज्य गणेशा ॥ टेक ॥
घर घरमें पूजा को मङ्गल दर्शाया।
सुख-कर्ता दुख-हर्ता आनन्द नरेशा ॥ १ ॥
सोहं शक्ति से ब्रह्मरूप को सजाया।
देवों में पूज्यमान भक्ति में सुतोषा ॥ २ ॥
जो आँखों आँखों में प्रभु-रूप समाया।
उन अनेक रूपों में है कल्याण प्रकाशा ॥ ३ ॥
सब सिद्धि सिद्ध-कारी कृपा-सिन्धु भाया।
"भक्त" कहे भक्तों की है याद हमेशा ॥ ४ ॥

भगवान् तुलसी प्रभु आओ।
भवसिन्धु पार लगाओ, प्रभु आओ ॥ टेक ॥
हँसने व खेलने में बचपन चला गया।
संसार माया ने अब है दबा लिया।
इस दीन को अब तुम ही बचाओ ॥प्रभु आओ० ॥१॥
तुम्हरी चरणों में प्रभु मैं हूँ भुला हुआ।
दर्शन का है "भक्त" आसी बना हुआ।
ना देर करो दौड़के आओ ॥प्रभु आओ० ॥२॥

आओ तुलसीप्रभुजी भगवान् कहानेवाले ।
मुझको चरण दिखाओ आराम दिलानेवाले ।।टेक।।
प्यारे सुदामजी को हृदय से लगानेवाले ।
कृष्ण बने तुम आओ गौओं के पालनवाले ॥ १ ॥
नृसिंह बने तुम आओ प्रह्लाद बचानेवाले ।
राम बने तुम आओ हनुमान मिलानेवाले ॥ २ ॥
दुःशासन के छल से द्रौपदी छुड़ानेवाले ।
विष्णु बने तुम आओ गजइन्द्र बचानेवाले ॥ ३ ॥
लाज रखो तुम आओ काल को भगानेवाले ।
शम्भु बने तुम आओ मार्कंड बचानेवाले ॥ ४ ॥
हनुमान बने तुम आओ निज "भक्त" बनानेवाले ।
"भक्त" कहे प्रभु आओ भक्तों के पालनवाले ॥ ५ ॥

दे दे मुझे भगवान् तेरी याद दिला दे।
है नाम तुलसीराम तेरा रूप दिखा दे॥ टेक॥
भय दुःख अभिमान की जड़ मनसे कटा दे।
जीवन में माया की खटक दिल से मिटा दे।
जो सुख में विघ्नकारी उसे मूलसे जला दे।
मल आवरण-विक्षेप जो है विघ्न हटा दे॥है नाम०॥१॥
लीला व महिमा तेरी जो लाचार को सुना दे।
'गुणगान' का प्रभाव यही तत्त्व लिखा दे।
मेरी क्षुधा की श्रान्तिहारी शान्ति पिला दे।
तेरे गुणों के गान हेतु मुझको जगा दे॥है नाम०॥२॥
भगवान् विधाता तू मुझे निज से मिला दे।
मन बोध-प्राण-देह का तू दान-विभा दे।
आसन प्रसन्न अपना मेरे पास बिछा दे।
इस "भक्त"को भगवान् अपना दास बना दे॥है नाम०॥३॥

———

प्रभु तुलसी मुझे चरणोंका दास बनादे।
भगवान्! अपनी मूर्ति मेरे मनमें बिठादे ॥टेक॥
दुर्जन व पापियों की सङ्गत मुझे न दे।
दिनरात प्रभु! तव गुण गाने की बुद्धि दे।
सज्जन व साधुओं का सहवास मुझे दे।
भगवान्! अपनी मूर्ति मेरेमन में बिठा दे ॥१॥
दुनिया है दुर्व्यसन की लालच में डूबती।
पापी व व्यसनियों के सङ्गत में झूलती।
इस "भक्त" को व्यसनों की आसक्ति से बचाले
भगवान् अपनी मूर्ति मेरे मनमें बिठादे ॥२॥

रखलो जगमें यह जीना
अपना स्मरण दिलाके।
आओ जी हमरे पालक
"तुलसी" तुम भक्तों के ॥ टेक ॥
जगमें देखो सारा अन्याय समाँ है
हम यह द्वेष भूलें विनती है
जग जाऊँ तुम जगमें बाँके ॥ "तुलसी०" ॥ १ ॥
हमें बचाओ प्रभु अभिमान क्रोध से
"भक्त" कहे अब हमको तुम से—
दूर ना करो कभी भूलके ॥ "तुलसी०" ॥ २ ॥

तुलसी प्रभो !

यह दिन आये कैसे।
तेरे भक्त बचें सङ्कट से ॥ यह दिन० ॥ टेक ॥
तेरी सूरत शुभ लाभ धन है
करवाले प्रभु सेवा मुझ से ॥ यह दिन० ॥ १ ॥
तेरा दर्शन दुर्लभ है प्रभु
और न कुछ भी चाहूँ दिलसे ॥ यह दिन० ॥ २ ॥
धैर्य जगा दे निर्भय बनादे
"भक्त" कहे प्रभु लगा हृदय से ॥ यह दिन० ॥ ३ ॥

तुलसी प्रभु ! सङ्कट कैसे हटाऊँ ?
इसी जनम में तुझे न पाऊँ ॥ टेक ॥

निजको तेरा दास बनाऊँ
शुभ नयनों से रूप निहारूँ
प्रेम न पाऊँ ॥ सङ्कट० ॥ १ ॥

दुष्ट भावना दूर हटाऊँ
सत्य कर्म को मनमें लाऊँ
मोल न पाऊँ ॥ सङ्कट० ॥ २ ॥

"भक्त" कहे तुझे दिलमें लाऊँ
तेरी महिमा निशिदिन गाऊँ
ध्यान न पाऊँ ॥ सङ्कट० ॥ ३ ॥

मैं ज्ञान कछु नहीं पाया तुलसी प्रभु मैं जन्म गवाँया।
अब है तेरा सुझाया प्रभु! शरण में दीन आया॥टेक॥
भटका इधर उधर को पर ना प्रभु को पाया।
गर पाया है तो क्या वह एक दुख ही हाथ आया।
प्रारब्ध क्या है खोटा कुछ कोई न बताया॥१॥
जाना है अब प्रभु मैं भटका कभी न जाऊँ।
ऐसे दयालु को मैं जीवन में भूल न जाऊँ।
मैं "भक्त" हूँ अब तेरा तेरी कृपाको पाऊँ॥२॥

आया...ओ...आया...
आया तेरे दर्शन मुझे चरणों में बसाले।
ले ले प्रभु तुलसी मेरे तन मन को सँभाले ॥टेक॥
दुनियाँ में लूट खूँद फैली है जो बेगैरत।
भेद इनका नष्ट करके अपनी याद दिलादे ॥लेले० ॥१॥
करनी है सेवा मुझको तेरी आस लगी है।
ना बैठे दिलमें छुपके दिव्य-शक्ति दिखादे ॥लेले० ॥२॥
अन्जाम इन्तखाब भक्तों का सहारा तू।
यह "भक्त" कहे व्याकुल हो तेरे दास बचाले ॥लेले० ॥३॥

प्रभु तुलसीजी श्री सद्गुरुजी, शरण तुम्हारे ही द्वार।
जीवन की नौका हमरी प्रभुजी, कर दो भू-सागर से पार
भक्तों के तुम हो आधार ॥टेक॥
तुम ही प्रभु हो रक्षक हमारे
दर्शक तुम्हीं हो भक्तोंको सारे
भक्तों के प्यारे रहो तुम हमारे
जो आयेगा शरण तुम्हें चरणे
जावे वह भव तरके पार
भक्तों की यही पुकार
"भक्त" कहे प्रभु नित्य तुम्हीं हो
भक्तों के सुख-करतार
सेवक सब नर-नार ॥ प्रभु० ॥

क्यों अन्त देखते तुलसी प्रभु भक्तों का ?
क्या कारणहै ब्रह्मरूप को दुःखदर्द आनेका ॥टेक॥
देखोगे कब तक यह अन्त हमारा
आजावे तो भी मौत इशारा
ना छोड़ें साथ तुम्हारा······ ॥क्यों० ॥१॥
हटाओ प्रभु तुम दर्द-निशाना
तुमको नहीं यह हमको है रोना
"भक्त" कहे भक्तों का ॥क्यों० ॥२॥

ऐ तुलसी प्रभु धन्य मुझे शक्ति दिखाया।
भगवान्! तूने रुग्ण को निरोग बनाया ॥टेक॥
तेरी कृपा की किरण मुझपे है पडगयी।
मेरी सुखों की कलियाँ तुझसे है खिलगयी॥
इस जीवन के दुःखों को मार भगाया।
भगवान् तूने जीवन का साथ है दिया ॥१॥
बुझती थी यह मेरी जीवन की ज्योति।
यदि सूरत तेरी मुझको नजर न आती॥
गरज भक्तों की तुझे प्रभु, "भक्त" जगाया।
भगवान्! तूने रोते को है क्षण में हँसाया ॥२॥

ऐ तुलसी भगवान् तूने "भक्त" जगाया।
अब मूक-प्राणियों को दे दे तू शाया ॥टेक॥

यह कैसा जमाना है बता?
बुद्धि मेरी भयभीत न बना।
प्रभु प्रसन्नता की प्रीति से—
प्यासे की यदि प्यास बुझाई तो तुझे क्या! ॥१॥

तुलसी प्रभु विनती है मेरी
बस ना लगे आने को देरी
मैं तेरे ऊपर प्रेम से—
भवसागर को पार कर जाऊँ तो तुझे क्या! ॥२॥

चाहूँ मूक-प्राणिन को
राख शरण में इनको
इस "भक्त" की कृपा को
आने के लिए भक्ति गरज है तो तुझे क्या! ॥३॥

प्रभु तुलसीराम को अनुजाम मेरा दो।
आसी बना चरण का दर्शन की याद दो ॥टेक॥
दिन बीत गये वे अब अन्त ना देखो।
याद तुलसी की रहेगी मेरे ज्ञान ध्यान को ॥प्रभु०॥१॥
जब तुलसी न आश्रय है
तबियत की दुर्गति है
मैं तड़प के मर जाऊँ मेरी याद न हो तो ॥प्रभु०॥२॥
आती न मुख में बातें
दर्शन की याद आते
अब "भक्त" न छोड़ेगा प्रभु तुलसी स्मरण को ॥प्रभु०॥३॥

यों तुलसी के गुण क्या गाऊँ
जो भक्ति शरण को ना पाऊँ ॥टेक॥
जो राग-द्वेष को अपनाऊँ
जो दीन दुखी को तरसाऊँ
जो रंग-ढंग को हर्षाऊँ ॥यों० ॥ १ ॥
जो धन-माया में फँस जाऊँ
जो उदर नाम पर ललचाऊँ
जो गुण गाने को भय पाऊँ ॥यों० ॥ २ ॥
जो ब्रह्म रूप को लौटाऊँ
जो सत्य अन्त पर क्रोधाऊँ
जो "भक्त" भक्ति में घबराऊँ ॥यों० ॥ ३ ॥

तुलसी प्रभु के गुण गाऊँ, ब्रह्मानन्दी बन जाऊँ ॥ टेक ॥
धीर धीर से शरण पधारे भक्ति ध्यान मन लाऊँ ।
तन मन धन से शीश झुकाके देहार्पण हो जाऊँ ॥१॥
पैरों से प्रभु के घर जाऊँ
हाथों से प्रभु चरण दबाऊँ
आँखियाँ रूप लाचार......
जिह्वा मेरी प्रभु रस चाखे
चाखे अमृत धार ! सेवक है संसार ॥२॥
सुमरन करने बुद्धि लागे
अभिमानाऽहंकारा त्यागे
प्रभु की महिमा कानों से-मैं–
निशिदिन सुनता जाऊँ
है यह "भक्त" शरण प्रभुको प्राण हार पहनाऊँ
दर्शन हृदय मिलाऊँ ॥३॥

तुलसी प्रभु की भव्यमूर्ति मेरे हृदय की पुकार।
नैनों का देखना जीवन का जोत्स्ना
निर्मल सु-शक्ति आधार भक्तों की भक्ति स्वीकार ॥ टेक ॥
क्यों मैं गमाऊँ, क्या न कमाऊँ
ऋद्धि-सिद्धि को दूर हटाऊँ
प्रभु गुण गाऊँ ब्रह्म पद पाऊँ
ऐसी प्रभु की मूर्ति है भारी
आनन्द सगुण साकार
तेजस्वी कान्ति आकार
प्रीति से "भक्त" की लाज बचाती
लीला है अपरम्पार, कहता हूँ बारम्बार ॥

प्रभु तुलसी की याद आती है ॥ टेक ॥
उपकार किये हैं च्रण-च्रण में
तन मन धन जल के आफत में
सन्देश दिये हैं मन-मन में
यह "भक्त" कहे प्रभु चरणों में ॥ १ ॥
जब सुमरन में खल आता है
घन-घोर काल मल छाता है
तब तुलसी का बल आता है
मल-दोष जोश सब जाता है ॥ २ ॥
सङ्कटों के आयासों का
इलजामों का आघातों का
हारक है प्रभु सब विघ्नों का
सहायकारी है भक्तों का ॥ ३ ॥

ब्रह्म पधारे सौम्य सजाये प्रभु तुलसी हैं आज ॥ टेक ॥

सुख के सागर प्रगट हुए हैं
ज्ञानियों के चमन बने हैं
नैनों के साक्षात बने हैं
सद्भक्तों के साज ॥ १ ॥

'सत्-चित् सुख' भक्तों को साचे
देव यही सब युग जनता के
देहार्पण की शरण स्वीकारे
हैं भक्तों के नाज़ ॥ २ ॥

भक्तों के कारण आये हैं
लाखों द्वेष हटा देते हैं
कैसे मङ्गल गुणकारी हैं
"भक्त" कहें प्रभुराज ॥ ३ ॥

मेरे लिए आराम है दरबार तुलसी प्रभु का।
भक्तों की यह जगह है दरबार तुलसी प्रभु का ॥ टेक ॥
आओ व जाओ कोई भक्ति से काम प्रभु को।
आया नवाब कोई तो है नवाब घर का ॥ १ ॥
रह जाय यहाँ कोई यदि रँग ढँग कर सब।
उसके लिए जुदा है आनन्द दिव्य प्रभु का ॥ २ ॥
तब तक न प्रभु को भूलें जब तक हो तन में दम।
आकर यहाँ बसे हैं उपकार यह प्रभू का ॥ ३ ॥
इस "भक्त" की पुकार को सुनो भक्त वृन्द हो
भय ना धरे किसी का आधार तुलसी प्रभु का ॥ ४ ॥

———

बस दूर ही रहे सब द्वेष हटाकर भेद भङ्गल द्वारा
प्रभु तुलसी साथ हमारा ॥ टेक ॥
जीवन में प्रभु एक शान्ति है
और सभी कुछ भ्रान्ति है
यह सत्य कहूँ प्रभु भक्तों का उजियारा ॥ प्रभु० ॥१॥
माता-पितादि सब कैसे हैं ?
शरीर-अन्त तक साथी हैं
यह समझ गये हम मायिक सारा पसारा ॥ प्रभु० ॥२॥
एक मार्ग प्रभु का सच्चा है
यह ब्रह्मरूप का साँचा है
अब "भक्त" कहे परब्रह्म ही हमको प्यारा ॥ प्रभु० ॥३॥

बेगरजी की गरज क्यों करे बाबा।
तुलसी प्रभु का हम पर है काबा ॥ टेक ॥
नहीं और के गुलाम हम अब—
तुलसी प्रभु के चाकर हैं
दास हैं हम भक्त हैं ॥ बेगरजी ॥१॥
नहीं हमें वह धन की लालच
तुलसी भाण्डार खूब भरा है
ब्रह्म समा है मोद समा ॥ बेगरजी ॥२॥
"भक्त" कहत है सद्भक्तों से
भक्तों पर प्रभु कृपा धार है
क्षमाधार है दयाधार है ॥ बेगरजी० ॥३॥

वे दुष्ट-ज़हर क्या करें प्रभु तुलसी कृपा जब है।
हो जाय सौख्यामृत सब प्रभु तुलसी कृपा जब है ॥ टेक॥
धन-दौलत के मोह से गरीबों को सताते हैं।
दारिद्र कुबेर होवे – प्रभु तुलसी कृपाजब है ॥ १ ॥
मनमें अभिमान राखे खुद को ही श्रेष्ठ समझते हैं।
दीन दास ब्रह्म पावे प्रभु तुलसी कृपा जब है॥ २ ॥
जगत में भ्रमित बनके जन्म व्यर्थ गँवाते हैं।
यह "भक्त" आनन्दी है प्रभु तुलसी कृपा जब है ॥३॥

भगवान् मेरे तुलसी प्रभु भगवान् का मैं दास।
हम दोनों को तोड़ न सकते डाल हजारों फाँस ॥टेक॥
क्यों चाहे इसे तोड़ना, होगा क्या किसको लाभ।
कोई कहे गर छूटेगा तो, समझो उसकी ख्वाब।
"गाओ मिलके प्रभु भजन को" यह है सन्तों की बात।
"माँ" बच्चे को कभी न भूली 'भक्त" कहे साक्षात् ॥
भगवान्! २ भगवान् मेरे तुलसी प्रभु० ॥

प्रभुनाम दिल से क्यों न भजे।
गुरु तुलसी जप कर विषय तजे ॥टेक॥
हैरान हुए क्यों जुलमों से
हट जाय व्यथा नामहिं सुमिरे ॥प्रभुनाम०॥१॥
गये वक्त को जाने दो
फिर नीच कर्म में हाथ न दो
करलो सब हरदम भजन यहाँ
दुख भय को अब ही दूर करे ॥प्रभु नाम० ॥२॥
आये हैं तुलसी प्रभू इधर
"भक्त" कहे प्रभु-चरण को धर
लग जाओ इनकी सेवा में
सब जन्म-मृत्यु का दोष टरे ॥प्रभु नाम० ॥३॥

कैसे ये दिन आये सबको सुनहरे।
आये प्रभु तुलसी भक्तों के सहारे ॥टेक।
जिनके लिये तड़पना वे हैं यहाँ पधारे
भागी हैं हम कहाँ तक कोई कैसे निहारे ॥१॥
महिमा प्रभु की लीला सुख के हैं इशारे
विश्वास धरो मन में विषयों को बिसारे ॥२॥
भक्ति से शरण आओ अंचल को पसारे
सज्ञान भाई-बहनों तुम्हें "भक्त" पुकारे ॥३॥

तुलसी प्रभु के गान गाओ गुरु के शुभ-गुणगान ।टेक।।
पाओगे भक्ति ध्यान
पाओगे शक्ति ज्ञान ।।तुलसी प्रभु० ।।१।।
हृदय-प्रीति से शुद्ध शक्ति से
विसरे विषयन भान, पाओ प्रभु का स्थान ।।२।।
देखो ना कुछ शास्त्रदोष अरु शुद्ध हृदय से गाओ ।
"भक्त" का आह्वान गाओ प्रभु गुणगान ।।तुलसी प्रभु०।।३।।

युद्ध मचाये क्यों, तुलसी प्रभु आये
ब्रह्म रूप आये, धन्य विजय मैं दूँ ॥टेक॥
बिकट समय भी सत्य बचाते
माया का भी नाश कराते
सत्य शक्ति का साथी बनते
धुमकाते "गटर-ग्यूँ" ॥१॥
भक्ति भजन में अमृत लाते
ब्रह्मानन्दी देह बसाते
राग द्वेष सब कुछ हटजाते
"भक्त" कहे कृपा यों ॥२॥

झन-झन बाजे तुलसी दरबार।
चले भक्तों की भक्ति पुकार ॥बाजे० ॥टेक॥
ताल-पेटी तबला बजत है
और बाद्य की गूँज उठत है
सेवक गण 'गुण गान' गात हैं ॥बाजे० ॥१॥
तुलसी प्रभु की डोल चलत है
ब्रह्मानन्द की ओर लगत है
यही "भक्त" की भक्ति ज्योत है ॥बाजे० ॥२॥

दिनरात 'तुलसी' गुण गाया।
प्रेम बिना नींद न पाया ॥ गुण गाया ॥टेक॥
हृदय मन्दिर में प्रभु को बिठा दिया।
अनन्य प्रेम से दर्शन मिला लिया।
निष्काम धरे ध्यान लगाया ॥ गुण गाया० ॥१॥
अभिमान क्रोध भय मन से हटा दिया।
विह्वल प्रीति से तन को भुला दिया।
आनन्द से "भक्त" कण्ठ रुकाया ॥गुण गाया०॥२॥

ब्रह्मानन्दी भरा है खजाना।
तुलसी भक्तों को अब क्या कमाना ॥ टेक ॥
प्रभु भक्तों के मन में बसा है।
श्री तुलसी का दर्शन हुआ है।
दिलमें दुख अब न कुछ भी रहा है।
ज्ञानी ध्यानी भक्तों का यह ठिकाना ॥ १ ॥
दूर रहें मनो कामना से।
कृपा दृष्टि प्रभु की दया से।
"भक्त" कहे सत्यता से।
है कृपा, परे की न तमन्ना ॥ २ ॥

धन्य श्री प्रभु का बना बावला।
तुलसी प्रभु का हूँ मैं बावला ॥ टेक ॥
बिसर पड़ा मुझे दाम काम का।
जीवन क्या है मानव देह का।
सत्य - असत्य भुला बावला ॥धन्य०॥१॥
भटकते हुए जप प्रभु नाम का।
सहवास रहे श्री प्रभु तुलसी का।
"भक्त" कहे तन मन से बावला ॥धन्य०॥२॥

तुलसी प्रभु अद्भुत माया तेरी।
कोई न पाया अन्त भारी ॥ अद्भुत० ॥टेक॥
धन्य स्वरूप को धन्य गुणों को।
धन्य धन्य सब माया न्यारी ॥अद्भुत० ॥१॥
जो देखत है हार जात है।
अघटित जनहित लीला धारी ॥अद्भुत० ॥२॥
मैं हूँ सेवक तू है तारक।
भक्त-"भक्त" की भक्ति प्यारी ॥ अद्भुत० ॥३॥

मैं जान गया पहचान गया
तुलसी प्रभु की माया ॥ टेक ॥
अजर-अमर जो रूप दिखाया
भय दुःखों से ना पछताया
वैदेह – स्थिति सिद्ध कराया
आत्मानन्द ही पाया ॥ १ ॥
अन्तर्यामी रूप सजाया
स्वयंप्रकाशी अद्भुत माया
सद्भक्तोंको हरदम छाया
यही "भक्त" अपनाया ॥ २ ॥

मेरे जीवन का साथी प्रभु तुलसी हैना ?
देखो देखो आनन्द सुहाना ॥ टेक ॥
प्रभु सुखकर है अमन-अमानी
दुःख-हरण है रूप कहानी
दर्शन है सारा यहाँ जाऊँ कहाँ ?
इस जीवन में ध्यान मेरा तुलसी है ना ? ॥ देखो० ॥१॥
फाँस बढ़ाते षड्रिपु सारे
प्रभु बिन बिगड़ी कौन सुधारे
सब ओर से "भक्त" की भीति गई
सारे भक्त सेवा में मस्त है ना ? ॥ देखो० ॥ २ ॥

छोटा भाई :—भैय्या चल-चल मेरे साथ।
तुझे बताऊँ 'तुलसी नाथ' ॥
बड़ा भाई :—तू जाने क्या वह बात।
छोटी उमर लघु गात ॥
छोटा भाई :—छोटी उमर तू मूढ़ न समझे।
बड़ा भाई :—ऐसा बतादे सब कोई समझे ?
छो० भा० :—"छोटी उमर प्रह्लाद।
हर लिया मनका विवाद ॥"
ब० भा० :—धन्य है तू छोटे भैय्या।
दूर किया अज्ञान जीया ॥
छो० भा० :—है "भक्त-भक्त" की वाणी।
चल भजले "तुलसी नाथ" ॥

———

भैय्या ! जय बोल बोल बहन ! जय बोल बोल
तुलसी प्रभु की जय बोल, बोल बोल
— प्रेम सुखी जय बोल ॥ टेक ॥
ज्ञान ध्यान में कर्म-कृत्य में याद इसी की करले ।
ना भूले तू 'भक्त' वचन को विचारी-मनमें रखले ।
यही धन तेरा यही लाभ तेरा
यही भक्ति अनमोल ॥ बोल बोल० ॥ १ ॥
तन मन धन को प्रभु चरण में
अर्पण निश्चित करले ।
डर न कभी तू भीति दुःख को—
प्रभु कृपा से सहले ।
यही भक्त-"भक्त" का सत्य वचन प्रेमका
सच्चिदानन्द में डोल ॥ बोल बोल० ॥ २ ॥

———

तुलसीप्रभु ! महिमा तेरी अपार
बतादे कौन लगाये पार ? ॥टेक॥
वेद-शास्त्र सब तुझे बतावे
विद्वान् तुझे लिखावे
प्रभु रे रूप सगुण साकार ॥बतादे० ॥१॥
साधु सन्त सब ध्यान लगावे
भक्त-सुजन मन भावे
ज्ञानी अज्ञानी दर्शन पावे
कलावन्त गुण गावे
प्रभु रे ! लीला अपरम्पार ॥बतादे० ॥२॥
राज-रङ्क सब साज सजावे
माया दासी धाये
भक्त भक्तों को मौन धरावे
सुरगण तव यश गावे
प्रभु रे ! "भक्त" दया उरधार ॥बतादे० ॥३॥

———

प्रभु रे ! तुझको मुझको कैसे एक बनाऊँ ? । टेक।।
तुलसीप्रभु तू भक्त-पियारा ।
सेवक हूँ मैं शरण पधारा ।
बिकट समय पर तू ही सहारा ।
दुःख किसे समझाऊँ ! ।।कैसे० ।।१।।
सेवा करते देखी न जाती
पापियों की झूण्ड झगड़ती
माया आती जी घबराती
ना समझे मर जाऊँ ! ।कैसे० ।।२।।
प्रभु जी तुझमें मैं मिल जावे
मिलने की अब विधि बता दे
यही प्रार्थना "भक्त" सुनाए
निर्णय कैसे गाऊँ ! ।।कैसे० ।।३।।

तुलसी प्रभु सुन ले यह कहना।
"शरीर से भजन कर लेना।"
शरीर का संरक्षण करना।
बुद्धि मुझे देना भक्ति मुझे देना ।।टेक।।
सगुण रूप है शरीर तेरा बार बार नहीं आना।
समय नहीं खोना, शरण मुझे लेना ।।१।।
तेरे शरीर संरक्षण की प्रभु, बुद्धि निरन्तर देना
ज्ञान ध्यान आनन्द न चहिए तेरे शरीर के बिना;
संरक्षण के बिना।
यही एक कहना शरीर सुख पाना ।।२।।
यदि पापी मैं पात्र नहीं हूँ बुद्धि परे को देना।
यही "भक्त" कहना, बुद्धि कई को देना ।।३।।

तुलसी प्रभु आनन्द - दायक
दीन - उद्धारक भक्त-सुतारक ॥ टेक ॥
नाहिं जिन्हे भ्रम-स्वप्न-सुषुप्ति
नाहिं जिन्हे निद्रा व जागृति ॥ १ ॥
नाहिं शुभाशुभ धर्माधर्म
नाहिं रात्र दिन जन्माजन्म ॥२॥
नाहिं सुखदुख द्वैताद्वैत
पागल-सन्त-न-साधक भक्त ॥ ३ ॥
धन्य चमत्कारक स्वरूप है
"भक्त" कहे यह 'ब्रह्म' सिद्ध है ॥ ४ ॥

—

ॐ धन्य ब्रह्म जय श्री माँ
"तुलसी माँ" "तुलसी माँ"।
सोहम् नित्य सत्य सर्वात्मा
साक्षी माँ साक्षी माँ ॥ टेक ॥
अन्तर्यामी अन्तर्ज्ञानी
काया विराजमानी सत्य ज्ञान है ॥ १ ॥
ब्रह्मानन्द, पूर्णानन्द
निर्मल परमानन्द शुद्ध रूप है ॥ २ ॥
नित्यानन्द, भक्तानन्द
प्रेरक भजनानन्द "भक्त" नाथ है ॥ ३ ॥

श्रीतुलसी-गुणगान

प्रथम-भाग

समाप्त

—०—

"अन्त काल"

'हीया देख भाल है, ब्रह्मेन्द्र जाल है।'
प्रभुतुलसीराम का कैसा "अन्तकाल" है ॥ टेक ॥

सद्भक्तोंके प्रेरक बनके सत्सेवा करवाये।
अकस्मात ही देखे देखे फुंसी-फोड़े आये ॥ १ ॥

अन्तकाल में आश्चर्यात्मक कई चिह्न दरसाये।
अति शुभ मङ्गल अवसर पर ही सुख से प्राण हटाये ॥ २ ॥

बहुविघ्नों की शान्ति हुई अरु सभी जीव सुख पाये।
"भक्त" कहे अब महिमा भारी सुरगण भी शरमाये ॥ ३ ॥

द्वितीय-भाग

(आरम्भ)

प्रभु तुलसी की गुरु तुलसी की
सगुण-ब्रह्म की जय जय जय हो ॥टेक॥
पूजनीय की वन्दनीय की
दर्शनीय की प्रार्थनीय की ॥ जय जय० ॥ १ ॥
सर्वश्रेष्ठ की सर्वशक्ति की
सर्वव्याप्त की सर्वसार की ॥ जय जय० ॥ २ ॥
आत्मशक्ति की नित्य तृप्ति की
तेज कान्ति की सौम्य शान्तिकी ॥जय जय०॥३॥
निर्विकार की निर्विकल्प की
निर्विवाद की निर्विरोध की ॥ जय जय० ॥४॥
भावगम्य की बोधगम्य की
ज्ञानगम्य की गुह्यतत्त्व की ॥ जय जय० ॥५॥
दिव्यरूप की सेव्यरूप की
स्तुत्यरूप की न्यायरूप की ॥ जय जय० ॥६॥
सिद्धरूप की तीर्थरूप की
ग्रन्थरूप की मन्त्ररूप की ॥ जय जय० ॥७॥
योग्य-ध्यान की भाग्य दान की
देवतात की "भक्त"-नाथ की ॥जय जय०॥८॥

कैसे तुलसीराम है, 'विदेह' के अनूजाम है।
भक्तों के भगवान् होते सबही के सुखधाम है ॥टेक॥
देखो सब जन ज्ञान से, अलौकिक विज्ञान से।
साधु-संत-देवादि में सबसे ऊँचा स्थान है ॥१॥
न त्याग है न भोग है, प्राक्तन का सब योग है।
जिनके पदके सामने 'जगमाया' सुनसान है ॥२॥
भाव पराया नहीं है अहंभाव भी नहीं है।
राज-रङ्क सोना-मट्टी जिनको सब समान है ॥३॥
अनिर्वचनीय रूप है, आश्चर्यात्मक रूप है।
खट्टे-मीठे-स्वाद की जिनको ना पहचान है ॥४॥
"भक्त" कहे निर्भ्रान्ति से, मौन लगाये शान्ति से।
सभी शास्त्र-वेदान्त में आखिर का सिद्धान्त है ॥५॥

ऐ ! तुलसीराम प्रभु सुनले तू
भक्तों का कहना कैसा है।
इस जन्म-मरण के दुःखों से—
भक्तों की आत्मा मुक्त रहे ॥टेक॥
यह जीवन जबतक जारी है,
यह सेवा हरदम तेरी है
तेरी मूरत हमको प्यारी है—
अब तूही सबका साथ रहे ॥१॥
हम तन-मन-धन से अर्पण हैं
संरक्षण इसका तू ही है
अब जैसी तेरी इच्छा है—
उसमें ही हम सब तृप्त रहें ॥२॥
तेरे विना न कोई सत्ता है—
तू न्याय-नियन्ता सच्चा है
अब "भक्त" कहे प्रभु चरणों में
हम ब्रह्मरूप में शान्त रहें ॥३॥

प्रभु तुलसीराम प्यारे, भक्तों को भूल न जाना।
आती है याद तेरी, दर्शन तू देके जाना ॥ टेक ॥
जब था मैं मठ में आता दर्शन तेरा था पाता।
अब तू यहाँ नहीं है कहदे कहाँ ठिकाना ॥ १ ॥
आशा में मेरी आँखें तुझको निरख रही है।
फिर भी कहीं न पाता गुजरा कई जमाना ॥ २ ॥
देरी न अब लगाना सुनकर पुकार आना।
दिलकी कसक मिटाना कहे "भक्त" यह 'तराना' ॥३॥

प्रतीति दिलानेवाले प्रतीति दिलादे ।
अखियाँ हमारी शान्त करादे ॥ टेक ॥
तुलसी प्रभु है शुभनाम तेरा ।
स्वयंप्रकाशक है उजियारा ॥ अखियाँ० ॥१॥
अन्ध-भक्ति को समूल जलादे ।
अपना रूप तू तुरत प्रगटादे ॥ अखियाँ० ॥२॥
सभी विषयोंका संशय हटादे ।
"भक्त" भक्तों को दर्शन तू दे दे ॥अखियाँ० ॥३॥

प्रभु तुलसी रहे इन नैनोंमें–
यह अखण्ड रस मनमाहीं ॥ टेक ॥
जिस-जिसने मन बहलाया है
वह सब ही झूठी माया है।
अब, नित्य जहाँ पर शान्ति है–
बस वही एक मनचाही ॥ १ ॥
धन सुख की मुझे न आशा है
कोई ना और भरोसा है।
बस मगन रहूं प्रभु-ध्यान में–
यह अखण्ड आस उरमाहीं ॥ २ ॥
यह "भक्त" कहे मन रोता है
फिर रो-रो कर यह कहता है।
प्रभु तुलसी बिना संसार में–
मुझे पसन्द और कुछ नाहीं ॥ ३ ॥

प्रभु तुलसी मेरे मनके हैं प्यारे
सदा मैं रहूँ प्रभुके चरण सहारे ॥ टेक ॥
लियारूप सुंदर सृष्टि को सजाने
इन्द्रिय समूह को आकर्षित कराने
सदा मन रहे, प्रभुमें रूप निहारे ॥ १ ॥
दुनियामें कोई चीज नहीं ऐसी
जोकि मुझे बलसे करती अपनासी
यही मन भये प्रभुके अगम इशारे ॥ २ ॥
मुझे कुछ किसी को डराना नहीं है
सिवा एक प्रभुके मुझे डर नहीं है
समर्पण रहे सबकुछ "भक्त" नजारे ॥ ३ ॥

प्रभु तुलसी क्या मैं भूल गया
इससे तुम मुझको भूल गये... ।
यदि तुमको मेरी याद रही
फिर दिल उदास क्यों होता है ॥ टेक ॥
जब मोह ग्रन्थियाँ टुट जातीं
दिल व्याकुलता से रोता है
भगवत्-पुकार फिर करता है
भगवान् हृदय में वास करे ॥ १ ॥
सम्पूर्ण रूप से शान्ति बने
अब इसके कारण क्या करना
यह "भक्त" कहे प्रभु कुछ भी हो
फिर दिलको कोई दुख न रहे ॥ २ ॥

श्री प्रभु तुलसी नाथ ! अरज सुन ध्यान धरे ।
सेवक हूँ गुरुनाथ ! अरज सुन ध्यान धरे ॥ टेक ॥

है नहिं मुझको धन की आशा
और न कोई है अभिलाषा
रख दे सिर पर हाथ ॥अरज० ॥१॥

तेरे दर का अब मैं भिखारी
जग भर फिरा पै झोली है खाली
भर दे तू ही नाथ ॥अरज० ॥२॥

क्यों कर होती है अब देरी
जान तड़पती है यह मेरी
"भक्त" कहे प्रभुनाथ ॥अरज० ॥३॥

प्रभु तुलसी सुन कहना ! मुझे तुझमें मिला लेना ।
अब देर नहीं करना प्रभु गोद बिठा देना ॥टेक॥
प्रभु मिले बिन नहीं सुझता
है जर्जर करती अमता
अब दुःख हटा देना, सुख शान्ति मिला देना ॥१॥
इस जग की झंझट भारी
सदा चली तेरी मेरी
प्रभु सहन शील तू सहना होता नहीं मुझे सहना ॥२॥
तू सहन शील का राना
मैं नाज़ुक दिल का बाना
भय व्याप फिर नहीं आना, कर सच्चिदानन्द करुणा ॥३॥
ऐ तुलसी प्रभु अविनाशा
तेरे मिलन की आशा
अब प्रसन्नता से आना, तेरा "भक्त" मिला लेना ॥४॥

प्रभु तुलसी सुन लेवे—
'सेवक' को न रुलावे ॥टेक॥
उत्सुकता से दास लगा है—
तुम्हरी सेवा करने।
प्रपञ्च चिन्ता दूर करो प्रभु
दीनन के कहलाये ॥१॥
माया कारण शान्ति नहीं है
प्रपञ्च दिल बहलाये।
संचित हारे कृपा करो प्रभु
तुमरा ध्यान लगावे ॥२॥
तड़पता है सेवक प्रभु जी
निशि दिन जी घबराये
"भक्त" कहे अब उसके बदले
मुझको खुद तड़पावे ॥३॥

———

अरे मेरे प्यारे मन चिन्ता न करना।
तुझे क्या कम है मुझे कह देना ॥टेक॥
तुलसी प्रभू के रूप का स्मरण
चण में हटाएँ चिन्ता व दैना ॥तुझे० ॥१॥
ऊँचा रहेगा मेरा देना
जग को भूल कर होता दिवाना ॥तुझे० ॥२॥
जो "भक्त" देगा सो छिपा लेना
अपने आप ही रहे मस्ताना ॥तुझे० ॥३॥

तुलसी प्रभु के ध्यान में सुशान्ति से रहे
ओ···सदैव निर्विकार से दिल लगा रहे ॥टेक॥
यह तो बता अरे मन आशा तू क्या धरे ?
ऐसी आशाओं से जीवन पार ना करे
भगवान् तुलसी के बिना कुछ आस ना रहे ॥ ओ० ॥१॥
(कोई) निन्दा करे या स्तुति करे उसमें अलक्ष्यहो
स्थिरतासे समाधान के लय में निमग्न हो
यह "भक्त" कहे जतलाके (इस) "भक्त" को कहे ॥ओ०॥२॥

———

खुद ही खुद को कमाना ओ३......॥टेक॥
प्रभु तुलसी का ध्यान लगाकर।
स्वयं शक्ति को प्राप्त करा कर।
इन्द्रियों को जीत लेना.......॥१॥
मोह रहे तो बढ़ती ममता।
ममता का बल लागे चिन्ता।
सबपर से मोह हटाना...॥२॥
सब में व्यापक है परमात्मा।
खुद में खुद ही हो परमात्मा।
पूर्णरूप ब्रह्म समाना... ॥३॥
जबतक खुद को नहीं कमाया।
तबतक जन्म-मरण न चुकोया।
ऐसा है "भक्त" निशाना...॥४॥

प्रभु तुलसी ने जगा दिया—
मेरा सोता सा जिया, पद में लिया ॥टेक॥
अज्ञानी को ज्ञान दिया, संसार को तारने ।
मेरा मुझको दान किया तुलसी ज्ञान ज्योति ने ॥१॥
अन्धे को सु-आँखें दिया साची रूप देखने ।
गूँगे को सु-वाणी दिया हितोपदेश बोलने ॥२॥
जन्म-मरण को खतम किया "भक्त" के 'सहवास' ने ।
मेरा बेड़ा पार किया प्रभु तुलसीराम ने ॥३॥

———

श्री प्रभु तुलसी राम नाम को गाऊँ प्रेम हृदय से ॥टेक॥
अभिमान क्रोध भय षड्रिपु सारे नष्ट किये सब भारे
तन मन धन को अर्पण करके होऊँ मुक्त जगत से ॥१॥
निशिदिन प्रभु गुण गाऊँ
प्रभु के ही काम में आऊँ, पाऊँ शान्ति, कृपा से ॥२॥
निर्धार "भक्त" का यही जगत में जीवन सफल बनाऊँ
हृदय प्रेम से भाव भक्ति से जन-सेवा कर जाऊँ ॥३॥

प्रभु तुलसी की मूर्ति मुझे प्यारी है। ओ मुझे २.... ॥ टेक॥
प्रेमसे हँसाती, प्रेमसे रुलाती
प्रेमसे डुलाती, प्रेमसे भुलाती
लीला की रचना अपार है ॥ ओ मुझे० ॥१॥
कार्यों में मङ्गल, मार्गों में प्राञ्जल
ज्ञानरूप निर्मल, देखनेमें उज्ज्वल
भोगोंसे शान्ति दिलाती है ॥ ओ मुझे० ॥२॥
दरसन को शुभ है, भक्तों की "माँ" है
सच्ची प्रेरक है, भजने को प्रिय है
भक्तोंकी भक्ति सजाती है ॥ ओ मुझे० ॥३॥
ज्योति जगाती है, दुखमूल जलाती है
मुक्ति का हेतु है, "भक्त" शुभ केतु है
रोगों के प्रति रामबाण है ॥ ओ मुझे० ॥४॥

प्रभु तुलसी के बिना ज्ञान नहीं,
क्या गमा दिया ? या कमा लिया ? ॥ टेक ॥
आना-जाना क्यों जगमें है, मेरी समझ में आता नहीं।
मैं, प्रभु की सेवा करता हूँ ! क्या वृथा किया, क्या व्यथा किया ?
लिखना-पढ़ना क्यों जगमें है, मेरी समझ में आता नहीं।
मैं, प्रभु की महिमा गाता हूँ ! क्या गुनाह किया, क्या फना किया ?
खाना-पीना क्यों जगमें है, मेरी समझ में आता नहीं।
मैं, प्रभु को भोग चढ़ाता हूँ ! क्या दोष किया, क्या भूल किया ?
सोना-जगना क्यों जगमें है, मेरी समझ में आता नहीं।
मैं, प्रभुको दिलमें पाता हूँ ! क्या समय बुरा, क्या हृदय बुरा ?
रोना-हसना क्यों जगमें है, मेरी समझ में आता नहीं।
मैं प्रभुका प्रेम बढ़ाता हूँ ! क्या दुःख हुआ, क्या पाप हुआ ?
जीना-मरना क्यों जगमें है, मेरी समझ में आता नही।
मैं प्रभु में विलीन होता हूँ ! क्या सत्व गया, क्या तत्त्व गया ?
अच्छा और बुरा क्यों कहते, मेरी समझ में आता नहीं।
अब "भक्त" कहे उत्तर पाऊँ ! सब सवाल का सब विचार का.?

दुख को ही सौख्य माने सुख को तो और जाने ।
धारा यह तत्त्व मैंने दी बुद्धि "तुलसी माँ" ने ।।टेक।।
अब फिक्र क्यों करूँ मैं किस हेतु से डरूँ मैं ।
नुकसान ना मरण में नुकसान ना जनम में ।। १ ।।
वासना रही अजानी कर्तब रहा निशानी ।
यह मेरी जिन्दगानी कैसी अजब कहानी ।। २ ।।
दुख-व्याल की ऐ खानी हिम्मत से मार जानी ।
ऐसी है "भक्त" वाणी करती है दिल का पानी ।। ३ ।।

—

मेरे जीवनमें आधार, प्रभु तुलसी के उपकार—
कोई क्या जाने ॥ टेक ॥

इसका जब मुझको तक पार नहीं है ।
मैं होता हूँ लाचार, दिल करता जय जय कार ॥ कोई०॥१॥
चैतन्य सार है, असार है संसार ।
दया कृपासे ही होता है उद्धार ।
मैं तर जाऊँ भव पार, सभी हुआ बेड़ा पार ॥ कोई०॥२॥
प्रभुने सब देदी अपनी ही शक्ति ।
जादे मिली एक चरणों की भक्ति ।
यह "भक्त" कहे दिलदार, है प्रभु मेरे सरकार ॥ कोई०॥३॥

जब तुलसी प्रभु मेरे साथी हैं
तो फिर क्या कम है ॥टेक॥
मेरे जी के भाग उजारे
हारे सुख-दुख सारे
आस न कोई मुझमें बाकी
साथ रहे प्रभु मेरे ॥तो फिर० ॥१॥
जो-जो प्राक्तन रचा गया है
उस की भोग-सलामी
तो-तो कर्तव मैं कर जाऊँ
ऐसी "भक्त" गुलामी ॥ तो फिर० ॥२॥

सुनो "भक्त" की ललकार प्रभु तुलसी के दरबार
चले आना, प्रभु के अंगना ॥टेक॥
तुलसी भजन से ही पाओगे शान्ति।
देवादि भिन्नता, छोड़ो यह भ्रान्ति।
सबको एक देखके, सारा भेद छोड़ के गुण गाना ॥प्रभु०॥१॥
आयेगा ओ दिन निकले जगत् से।
उसके पहले ही छूटो बन्धन से···।
आसक्ति को त्याग के, भक्ति ध्यानको पाके मुक्त होना॥प्रभु०॥२॥
कितना भी दुःख हो अपने शरीर को।
पल-भर भी ना भूले (श्री) तुलसी प्रभु को।
"भक्त"-कहे भक्तों से, ब्रह्म ज्ञान को पाके सुख पाना ॥प्रभु०॥३॥

अभिमान न आ जाएँ कोई अपने क्रिया का
है कर्म सभी अपना 'प्रभु तुलसी' कृपा का ॥टेक॥
जो कुछ भी होता है वह प्रभु आज्ञा है समझो
जब ऐसा निश्चय होगा हुआ कार्य दया का ॥है कर्म०॥१॥
गर्व-रहित होने पर ही क्रोधादि दोष टले
निःस्वार्थ हितचिन्तन से हित होता प्रजा का ॥है कर्म० ॥२॥
शूर वीर रावण कंसादि, हुए नष्ट अभिमानी
"भक्त" कहे 'निरभिमानी' लहराएँ पताका ।है कर्म० ॥३॥

—

अरे लफंगे! तुलसी प्रभु की दया कृपा जो पायः
वह सब में धन्य कहाया ॥टेक॥
तुझमें सारे ढोंग भरे हैं प्रभु नाम पर पेट भरत है
बिना सेवा के सुख चाहत है, भोंदू चाल चलाया
ढोंगी स्वाँग सजाया ॥अरे लफंगे० ॥१॥
मस्त रहे वह हरदम जग में, दया दृष्टि को राखे मन में
सुख-दुखों को डरे न जाई, जैसी स्थिति है सहते जाई
गुरु सेवा में प्राण लगाते, सबको शान्ति दिलाया ॥वह० ॥२॥
नहिं है उसको कोई दुर्जन, और न कोई उसको सज्जन।
समान माता-पितादि सब जन, जो यों प्रेम रचाया
है उसको "भक्त" नमाया ॥अरे लफंगे० ॥३॥

—

जब अहम् का आवरण जाये····
प्रभु तुलसी का दर्शन पाये ॥टेक॥
'विदेह स्थिति से समाप्त होके-निराकार में छाये।'
'लीला महिमा ध्यान भजन में अपना रूप छुपाये।'
प्रभु तुलसी कहीं नहीं जाये, वे सर्वव्यापी यहीं छाये ॥१॥
आस भरी आँखों से निरखे निशिदिन ध्यान लगाये।
छोड़-फलेच्छा हताश ना हो सारी आयु लगाये।
श्रद्धा से तन्मयता पाये, अपने खुद की सुध बिसराये ॥२॥
दीन-दयालु तुलसीराम प्रभु भक्तों के कहलाये।
भूल नहीं जाते किसी भक्त को अपने हिये लगाये।
जब 'अहम्' रहित "भक्त" पुकारे,
(ओ)-प्रभु-तुलसी प्रसन्न आये ॥३॥

चल-चल "मठ" में खुशी की यह बात है
अपना बेड़ा पार प्रभु तुलसी के हाथ है ॥टेक॥
संसार की माया में फसता जो जायगा।
नाहक ही जीवन में पछताए जायगा।
माया-मोह झूठ है ब्रह्म ही सच्च है।
अपना बेड़ा पार प्रभु तुलसी के हाथ है ॥१॥
आशा की लहरों को मनसे हटाएजा।
तुलसी के नामों की ज्योति जगाएजा।
सुख-दुख जात है शान्ति मिलत है।
अपना बेड़ा पार प्रभु तुलसी के हाथ है ॥२॥
अनमोल समय को नहीं गमाना।
लिए शरण को चरण कमाना।
"भक्त" कहे प्रेम से आखिर का वक्त है।
अपना बेड़ा पार प्रभु तुलसी के हाथ है ॥३॥

चल दुःख जले, चल दुःख जले
तुलसी प्रभु के धाम चले ॥ टेक ॥
उस अपार स्थलपर जाते ही।
सब विचार आते निष्प्रेही।
सुख अनुभव पाके मनमाही।
जीवनभर की शान्ति मिले ॥चल०॥१॥
भ्रम-श्रम-दुखमय जीवन बदले।
पत्थर भी हो तो झट पिघले।
जीवन अपना कृतार्थ करले।
जन्म-मरण का बार टले ॥चल०॥२॥
इन बातों पर तू राजी हो।
बलपूर्वक मन का राजा हो।
सम्पूर्ण रूप से अर्पण हो।
साथ-साथमें "भक्त" डुले ॥चल०॥३॥

स्मर तुलसी राम को भाई !

चिन्ता तेरी 'सार-जगत्' की क्षण में हटकर जाई ॥टेक॥
सुख दुःखों की शरीर काया इसके कारण क्यों घबराया
धीर धरे अब ना घबराये, है सब प्रभु की माया !
कर्म-भोग को सुख से सहले, त्यजकर मान बड़ाई ॥१॥
तुझपर मेरा प्रेम लगा है, करके राह दिखाई
बन्ध-मोक्ष की सीमा तहकर, सब सुखमय बन जाई
खुद होके सुमिरन करने में मत कर कोई ढिलाई ॥२॥
श्रद्धा को रख प्यारे भाई ! स्मरण मात्र तर जाओ
"भक्त" कहे सुन मैं हूँ जबतक तुझको कुछ डर नाहीं ॥३॥

प्रभु तुलसी सभी के प्यारे वे नहीं हैं तेरे मेरे ॥टेक॥
दीन-पतित या राजा होवे।
कोई किसी का प्रश्न न आवे।
जो शुद्ध हृदय को पाये, वे पाये प्रभु को ही प्यारे ॥१॥
प्रभु मिलने को बहुत सुलभ है।
तुझमें मुझमें सबमें बल है।
बस एक हटाने का है, वह माया अहं को ही प्यारे ॥२॥
अखण्ड श्रद्धा दिल में रख ले।
काया वाचा मन से भज ले।
ले शरण कृपा को पाले, यह "भक्त" कहे अब सुन प्यारे ॥३॥

विश्वास रखो, प्रभु तुलसी जी का वे हैं तुम्हारे साथ।
मोरे भैया! मोरे पिया! वे हैं तुम्हारे साथ ॥टेक॥
निवृत्त बन कर ध्यान-योग का—
बल ही बढ़ाते जाओ, पूरे मनोरथ पाओ ॥१॥
खुद कृतियों से निराश न होना—
धैर्य धारी बन जाओ, विनम्रता को पाओ ॥२॥
दृढ़ता पूर्वक करो प्रार्थना—
प्रभु प्रीत्यर्थ सब काम, सच्चा यही विश्राम ॥३॥
स्वार्थ त्याग कर 'निरिच्छ-भक्ति'—
मन में धरो दिन-रात, क्षण में तुम्हें फल-प्राप्त ॥४॥
"भक्त" बोल पर निर्भ्रम रहना—
मेरे प्राण प्रिय आव, ब्रह्म स्वरूप को पाव ॥५॥

———

तुलसी के गुण गाओ जी, प्रभु के गुण गाओ जी···
गाओ भजन सुख पाओगे ॥टेक॥
घूम-घूम कर सारी दुनियाँ, पाई न कवड़ी कमाई।
क्यों नहीं आते शरण प्रभु की, करते लापरवाही ॥१॥
मानव जीवन सर्व श्रेष्ठ है, व्यर्थ न इसको खोना।
प्रभु बिन ना कोई सहारा, रहे न मन भरमाई ॥२॥
कर लो दिल में प्रण निश्चय से, सब में प्रभु की व्याप्ति।
सुनाएँ बात, "भक्त" प्रेम की, धरों हृदय में शान्ति ॥३॥

प्रभु तुलसी नाम गाओ। भव तरके पार जाओ।
मानव का धर्म चाहो। जीवन में शान्ति पाओ ॥टेक॥
अविरत मगन लगन से-परिपूर्ण भावना से
गुरु का ही ध्यान करके 'लीला' को याद लाओ ॥१॥
मन-कालिमा हटेगी, सब सिद्धियाँ मिलेंगी
सुख-दुख झंझट मिटेगी, श्रद्धा से लीन होओ ॥२॥
निर्वाण पद मिलेगा, जो चाहो सो मिलेगा
अब "भक्त" यह कहेगा, क्षण भी न व्यर्थ खोओ ॥३॥



प्रभु तुलसी के "गुणगान" गाओ गाओ ।
सच्चिदानन्द विज्ञान पाओ पाओ ॥टेक॥
है जहाँ जहाँ पर मोह हटाओ मन को ।
या जहाँ जहाँ हो, प्रेम वहाँ लो प्रभु को ।
सब सार यही, मनु-प्राण गाओ गाओ ॥१॥
है क्षणिक-तनिक सब सौख्य विषय को जाने ।
इस जग की लीला देख पड़ो ना भ्रम में ।
मनु-ध्येय धरो नित ध्यान, गाओ गाओ ॥२॥
गुरु कृपा हृदय से एक मिला लो जग में ।
दुख बाधा का नाश होवेगा क्षण में ।
यह "भक्त" करे सन्मान गाओ गाओ ॥३॥

जो देखें दिखती सब थल प्रतिमा तुलसीराम की।
क्या गज़ब विलक्षण प्रेम अवस्था प्रभु के प्रेम की ॥टेक॥
है जन्म-मरण क्या बन्ध मोक्ष क्या बिसरा प्रेम ने।
संसार-व्याधि रोग भोग सब बिसरा प्रेम ने।
सुधि देह आदि की भी नहिं यह मस्ती प्रेम की ॥१॥
रिश्ता-नाता और अन्यथा नहीं है प्रेम में।
इसी प्रेम से मग्न निरन्तर हरि के ध्यान में।
कोई चिन्ता नहिं रह जाती है यह दृढ़ता प्रेम की ॥२॥
स्नेही-द्रोही रहे न कुछ, लक्षण है प्रेम का।
अनिर्वाच्य आनन्द रूप है प्रभु के प्रेम का।
अब यों ही सब जन प्रेम कमाओ वाणी "भक्त" की ॥३॥

धन्य-धन्य "तुलसी" के लाल, मुक्त बनें उत्साही बाल ॥टेक॥
ऐक्य भावसे रहने वाले, सत्य मार्ग दिखलाने वाले।
मिटा दुर्व्यसन-बने निर्व्यसन हटा दिये विघ्नों के जाल ॥१॥
'तुलसी माँ' के पुत्र कहाये, माँ, बच्चों का स्नेह सजाए।
भगा-द्वेष अभिमान को मनसे, नम्र बने ये सब तत्काल ॥२॥
'तुलसी माँ' का ध्यान लगाया, इन्द्र देव का तख्त हिलाया।
जान लिया यह देवों ने भी, हैं ये भक्त अतीव कराल ॥३॥
भक्ति शक्ति से प्रभुको पाया, अपना जीवन धन्य बनाया।
तुलसी का जय घोष लगाया, खुशी मनाते हैं दिग्पाल ॥४॥
"भक्त-भक्त" का है यह 'मेला' दीन-दास का पालन वाला।
प्रभु तुलसी के असीम कृपा से अमर रहेगा तीनो काल ॥५॥

तुलसी प्रभु के भजन में आनन्द है।
बन्ध मोक्षसे रहित इसका स्वाद है ॥टेक॥
ज्ञानी-योगी हार गये इसके लिए।
ऐसी दुर्लभ वस्तु मेरे पास है ॥तुलसी प्रभुके० ॥ १ ॥
जप-तपादि विधि साधन से नहीं मिला।
शरणागहते प्रभु-कृपा से प्राप्त है ॥तुलसी प्रभुके० ॥ २ ॥
ब्रह्म-स्वादमय भजन गानेके लिए।
"भक्त" हमेशा प्रभु चरण में मस्त है ॥तुलसी प्रभुके०॥३॥

तुलसी के गुणगान, हमसब गाने वाले हैं ॥ टेक ॥
प्रभु बिन सब कुछ दुनिया का है झूठ पसारा सारा ।
हमें किसी की नहिं आसक्ति, है प्रभु तुलसी प्यारा ॥ १ ॥
स्वार्थ, द्वेष, छल, लोभ, घृणा, भय आदि दोष को हारे ।
विनय, स्नेह, शुभ, शान्ति, अहिंसा, क्षमा, प्रेम को धारे ॥२॥
फजूल अबतक समय गवाँते, रो-रो हँस-हँस बैठे ।
"भक्त" कहे अब बिना भजन के एक क्षण नहीं छूटे ॥३॥

भक्ति भरे दरबार में भक्तों का सङ्ग दिया।
संसार का ध्यान त्यागकर "तुलसी" का नाम लिया ॥टेक॥
संसार असार है यह मैं भक्तों से क्या कहूँ।
तुलसी ने मुझको, मुक्त हो मुक्ति का मार्ग दिया ॥ १ ॥
जीवन निरिच्छ करके वे विदेह स्थिति ले।
स्व प्रतिमा बन गये मुझे पुजारी कर दिया ॥ २ ॥
देवों के देव रहें श्री गुरु मानव के रूप में।
यह "भक्त" करे फरियाद जिन्हें दिवाना कर दिया ॥ ३ ॥

"तुलसी माँ" ने धन्य किया सुख दुख भोगों से मुक्त किया ॥
अजब यह अवस्था कैसी समझाएँ
रोने के वक्त पर रोना नहीं आये
हसने के वक्त पर हाँसी नहिं आये
समान ऐसी वृत्ति दिया, सममय मेरा दिल शान्त किया ॥
जप तप की विधि मेरी हुई उलङ्घन
ब्रह्ममें लीन हुआ मेरा यह जीवन
किसको सुनाऊँ हाय ! मेरा कथन
"भक्त" झण्डा लहरा दिया, ब्रह्मनिष्ठ बलको दिखा दिया ॥

श्री गुरु तुलसी —माँ ने, श्रीप्रभु तुलसी–माँ ने...
ओ...श्री तुलसी—माँ ने यह मेरा ध्यान हरा है ॥टेक॥
एक दिया बस रूप अपना, मेरा दिलका रमना।
जाने को कुछ रहा न जाना, कैसे आशा करना।
हरा लिया सब माँ ने, छीन लिया सब माँ ने....॥
ओ--श्री तुलसी—माँ ने यह मेरा ध्यान हरा है ॥१॥
देह, क्रिया में यदि लग जाये ध्यान न इसमें कोई।
मेरी किस्मत चला रही है, प्रभु की मूरत पाई।
"भक्त" कृपा की माँ ने, "भक्त" दया की माँ ने....
ओ श्री तुलसी—माँ ने यह मेरा ध्यान हरा है ॥२॥

मैं तेरी कृपा से "माँ" ! रहता हूँ मस्त ही माँ !
कोई नहीं तेरे बिना साथी "तुलसी माँ" ॥टेक॥
ना स्वर्ग नर्क भय है, ना-तुच्छ-सुइच्छा है।
ना-लज्जा-लालच है, ना मोह किसी का है।
दैव-योग भोगों को ना-सुख-दुख माना है।
मैं तुझमें व्रस हुआ, ऐ ! अद्भुतधारी "माँ" ॥मैं०॥१॥
विलय हुआ त्रिपुटी का; द्रष्टा-दृश्य दर्शनका।
"प्रभु" ! तेरी सत्ता है यह दृष्टि बनी बाँका।
आनन्द भरा सब है सच्चिदानन्द घन का।
यह "भक्त" कहे दिल से ऐ ! धन्य कृपामय "माँ" ॥२॥

श्री गुरु तुलसी राम; श्री प्रभु तुलसीराम।
तुमही हो सद्भक्त जन के जीवन में विश्राम ॥टेक॥
सब जीवों की करते भलाई
श्रुतियों ने है महिमा गाई।
शान्त किया है सेवक गण तुम सबके हो सुख धाम ॥१॥
अखण्ड अक्षय निज स्वरूप का स्मरण दिलाने वाले।
आत्म तत्त्व का है किया उजेला
हटा दिया सब काम। बना दिया निष्काम ॥श्री० ॥२॥
भव के जन्म-मरण बन्धन से मुक्त कराने वाले।
स्वयं रूप का ज्ञान दिलाया—
भक्तों के अभिराम! करता "भक्त" प्रणाम ॥श्री० ॥३॥

हस-मुख ही सदैव मुझे देखोगे–
तुलसी जी श्री तुलसी जी ॥टेक॥
पूर्ण कृपा को धारा है तुमने
कृपा आनन्द को पाया है मैंने
इस कारण मेरा हास्य देखोगे ॥तुलसी जी० ॥१॥
खुद को दुःखी बनाता नहीं मैं
सर्वदा प्रेम लगाता रहूँ मैं
इस सप्रेम में आप छाओगे ॥ तुलसी जी० ॥२॥
विघ्न बाधादिका भय नहीं है
निर्मल आत्मा बिना कुछ नहीं है
अब, सेवा में यह "भक्त" चाहोगे! ॥तुलसीजी०॥३॥

प्रभु तुलसी की शरण लिया मैं ।
नहीं किसी से हार गया मैं ॥टेक॥
शरण कृपा से जिया भला है ।
शुभ-मङ्गलमय सभी बना है ।
जो देखें सो सौख्य भरा है ॥प्रभु०॥१॥
बाधा सारी नष्ट हुई है ।
किसी तरह की भीति नहीं है ।
दरिद्रता का नाश हुआ है ॥प्रभु० ॥२॥
पाप-तापसे छुटकारा है ।
भगवत्सत्ता शेष रही है ।
"भक्त" कहे अब मुक्त बना मैं ॥प्रभु०॥३॥

———

जब तुलसी प्रभु का 'भक्त' बना
तब माया मेरी दासी है।
संसार-व्यथा से मुक्त बना–
इन सबका कारण तुलसी है ॥टेक॥
जीवन की सीमा लगवाया
नर 'ध्येय' को पूरन करवाया
प्रभु की सत्ता को कमा लिया
अनमोल मुक्तता पाई है ॥ १ ॥
उस हद्द तक देह रहना है
प्रारब्ध-दासता करनी है
यह "भक्त" कहे अब इन सब में
प्रभु की मोहब्बत छायी है ॥ २ ॥

मैंनें प्रभु तुलसी का ध्यान किया
है देह-इन्द्रिय सब जीत लिया
माया का होना भूल गया ॥ टेक ॥
क्या सर्दी गर्मी पड़ती है
लाखों की जान तड़पती है।
परिणाम किसी का कोई नहीं
क्या अजब कृपाका ध्यान किया ॥१॥
सब मोह हटाने वाले का-
सुख दुःख मिटाने वाले का।
है विदेह स्थिति जो निर्मोही
अखण्ड शान्ति का ध्यान किया ॥२॥
सब चिन्ता अचिन्ता छोड़ी है
प्रभु प्रेम की प्रीति जोड़ी है।
प्रभु रूप स्मरे सब भास जले २
यह "भक्त" जिया तल्लीन किया ॥३॥

प्रभु तुलसी मेरे मनमें, प्रभु तुलसी सारे जगमें।
पाताल-स्वर्ग-भू में सम्पूर्ण चराचर में ॥ टेक ॥
भावों में और गुणों में आकार क्रियाओं में।
अन्तर्बहिः सभी में निःसीम ससीमों में।
भगवान् व्याप्त सबमें ॥ प्रभु तुलसी० ॥ १ ॥
है धन्य धन्य मनकी यह आत्म-बुद्धि समता।
आकार वृत्ति पर ही व्यवहार की विषमता।
कुछ भेद नहीं इसमें ॥ प्रभु तुलसी० ॥ २ ॥
अब मैं मनुष्य बाना प्रारब्ध का निशाना।
प्रभुका बना दिवाना गुरुका बना दिवाना।
यह "भक्त" कहे दिलमें ॥ प्रभु तुलसी० ॥३॥

"तुलसी रे" तूही मेरा "ग्रन्थ" बड़ा है।
ना शास्त्र बड़ा है, ना वेद बड़ा है ॥ टेक ॥
शास्त्र-वेद क्या है, तेरी पहचान है।
जब तूही मिला है तो क्या न मिला है।
ऐ! तुलसी भगवान्, मुझे तूही बड़ा है॥१॥
ग्रन्थ रूपी तुझमें, 'गुण', 'रूप' लिखा है।
जो तर्क किया है सिद्धान्त लगा है।
ऐ! तुलसी भगवान् यह तेरी कृपा है॥२॥
तेरे उपकार का अन्त नहीं है।
आनन्द-ही-आनन्द, आनंद भरा है।
यह "भक्त" कहे तूही साक्षात् "ग्रन्थ" है ॥ ३ ॥

मुझे आशा नहीं और किसी की--
मेरे तुलसी प्रभु के बिना ॥टेक॥
स्वार्थ के लिए ही बड़ी-बड़ी किताब लिखना।
वाद-विवाद आदि ढोंग युक्त झगड़ा करना।
कोई फायदा नहीं ऐसा ज्ञान पाके
मेरे तुलसी प्रभु के बिना ॥१॥
कीर्ति की आस से 'बहुमत' की सेवा करना
सत्ता अभिमान से 'कम मत' का विरोध करना।
कोई न्याय नहीं मान बढ़ा के
मेरे तुलसी प्रभु के बिना ॥२॥
श्रद्धा शरण बिना मन्दिर में बैठे रहना।
सुख की बात नहीं, राज महल ही में रहना।
"भक्त" कहे दिल को शान्ति नहीं है
मेरे तुलसी प्रभु के बिना ॥३॥

प्रभु तुलसी मुझको भजने दे
इस सेवक को अब दूर न कर।
आनन्द भरा ही रहने दे
इस अरमाँ को अब चूर न कर ॥टेक॥
काशी में मर कर 'मुक्ति' न कोई (न चाहिए)
सम्पूर्ण राज का जन्म न कोई ”
तेरे ही 'चरण' में मरने दे। तेरी ही सेवा करने दे।
प्रभु अब तू मुझे निराश न कर ॥१॥
कोई बुरा हो चाहे अच्छा हो
ना उससे मुझ को नफरत हो
प्रेमी जीवन को बहका कर
इस नित्य प्रेम को खण्ड न कर ॥२॥
चाहे तो मुझको भोगी कर
पर सब जीवों में शान्ति कर
यह "भक्त" कहे प्रभु सुन ले अब
अपने भक्तों को दुखी न कर ॥३॥

जय तुलसी प्रभु की जय, जय ब्रह्मलोक में।
देवों का देव कहके संसार सार में ॥टेक॥
भक्तन को सहाय देने तितिक्षा के रूप में।
निर्द्वंद्व निरामय जय२ स्वानन्द-योग में ॥
॥ देवों का देव० ॥१॥
सुखकारी उपकारी हैं अवस्था की हरकतें।
सुखदायी है यह सबको, तीनों ही काल में ॥
॥ देवों का देव० ॥२॥
जय गूँज रही कण-कण से, आनन्द की लहर में।
यह "भक्त" कहे है जय जय देवादिलोक में ॥
॥ देवों का देव० ॥३॥

तू मेरा प्राण-पियारा।
तुलसी प्रभु तू ही एक सहारा ॥टेक॥
घोर विपत के मौके में।
प्राण निकल कर जाने में।
भक्ति के स्वर में तुझको पुकारा ॥१॥
तेरी मेरी प्रीति जुटी।
तेरी कृपा से विपत हटी।
पुकार सुनकर तुरन्त तू दौरा ॥२॥
तड़प-तड़प मर जाऊँ मैं।
स्मरण को नहीं छोड़ूँ मैं।
"भक्त" कहे तू भक्तों का प्यारा ॥३॥

श्रीतुलसी-गुणगान

द्वितीय-भाग

समाप्त

ॐ नमः शिवाय ॥ टेक ॥

हनुमान श्री तुलसी कृपा मूर्ति अविनाशी ॥ ॐ ॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि गुरु लिंग जंगमादि ॥ ॐ ॥
गजानन सरस्वती नारसिंह बृहस्पति ॥ ॐ ॥
महावीर शिरोमणि चराचर सब प्राणी ॥ ॐ ॥
चन्द्र सूर्य नक्षत्रादि राम-कृष्ण-रहिमादि ॥ ॐ ॥
श्रीबालाजी श्री श्रीरंगा श्री विठ्ठला पांडुरंगा ॥ ॐ ॥
जै श्रीलक्ष्मी अंबा देवी पतिव्रता श्रीजाह्नवी ॥ ॐ ॥
दत्तात्रय नवनाथ ज्योतिर्लिङ्ग वैद्यनाथ ॥ ॐ ॥
साधु सन्त भक्त दासा माता-पिता-बन्धु-स्वसा ॥ ॐ ॥
सभी देव कृपा करो "भक्त" को हृदय धरो ॥ ॐ ॥

❀ आरती ❀

आरती तुलसीरामप्रभु की। सुयश-मङ्गल-प्रद सद्गुरु की ॥टेक॥

योगक्षेम सहज परेच्छासे दुःख-भय-शोक मोह नासे
परिग्रह कभी नहीं ग्रासे दिगम्बर ब्रह्म रूप भासे
उन्मनी सहज समाधि है
नित्य अनुभव अमृत रस है
क्रोध आभास मात्र ही है
देहे ना भ्रान्ति, जीव–विश्रान्ति, योग्य गुरु मूर्ति
मौन धर ऐक्य आचरणों की–॥ सु-यश-मङ्गल० ॥ १ ॥

तीर्थ में गुप्त रूप धारा निर्भय सर्प धरे हारा
अपरम्पार लगा झूला दोनों हाथों को खोला
देह को छेड़ा लोगों ने
फिर भी सुफल दिया प्रभु ने
किसी को कुछ न कहा, कहने
"रहते बन्धन में, आये बाहर में, ताले थे घर में"
धन्यमय लीला धारी की ॥ सु-यश-मङ्गल० ॥ २ ॥

तरुण सदृश वृद्ध काया तरुण देखे मन शरमाया
ठेंगणी श्याम सुन्दर काया जहाँ विश्राम पूर्ण पाया
स्थूल तन गति अति चञ्चल है
भव्य मुख शान्त मनोहर है
आसन स्थायी अविचल है
सदा ही मुक्त, भक्त-अनुरक्त, कृपा से युक्त
"भक्त" कहे विदेह धारी की ॥ सु-यश मङ्गल० ॥ ३ ॥

॥ इति ॥











तुलसी प्रभु का ही ध्यान ले मस्त
मस्त की मस्ती से मस्ती ले मस्त है।
तृप्त की तृप्ति से तृप्ति ले तृप्त है
भक्त की भक्ति से भक्ति ले "भक्त" है ॥